ஃ चतुर्थ अध्याय ஃ

समकालीन दलित कवियों की कविता

◈ प्रास्ताविक

प्राचीन काल से दलित कुचला एवं दबाया जा रहा था। पशुवत जीवन को उसने अपनी नियति मान लिया था, लेकिन समयांतर में दलितों में मुक्ति-चेतना जागृत होती गई और वह अपने मानवोचित अधिकारों के लिए सतर्क एवं सजग बनता गया। इन सामाजिक अवस्थाओं के परिवर्तन का प्रतिबिंब साहित्य में उभरकर सामने आया। प्राचीन साहित्य में दलित दमन एवं दलन का वर्णन मिलता रहा है, जबकि परवर्ती रचनाओं में बंधनों के इस मकड़जाल से मुक्ति की छटपटाहट स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। यह मुक्तिसंघर्ष समयकाल अनुसार तीव्र से तीव्रतर बनता प्रतीत होता है। दलित कविता इसी पारिवेशिक परिवर्तनों की प्रत्यक्षदर्शी बनी रही है। जहाँ प्राचीनकालीन रचनाओं में अत्याचारों का वर्णन करके सामाजिक कलंक को सामने लाने की वृत्ति मिलती है, वहीँ आधुनिक कविता में ऐसी अतार्किक एवं अमानवीय समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की तीव्रता महसूस की जा सकती है।

तृतीय अध्याय में हमने प्राचीन से आधुनिक काल तक की दलित काव्य परंपरा का अध्ययन किया है। प्रस्तुत चतुर्थ अध्याय में हमने समकालीन दलित हस्ताक्षरों के कृतित्व का आकलन करने का प्रयास किया है। 'समकालीन' शब्द भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थ देता है, अतः हमारे शोध प्रबंध के संबंध में 'समकालीन' शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करना समुचित जान पड़ता है।

4.1 समकालीन दलित कविता

'समकालीन' में दो शब्द है- 'सम' एवं 'कालीन', 'सम' से तात्पर्य है 'समान' एवं 'कालीन' समय विशेष को सूचित करता है। अतः 'समकालीन' का अर्थ होता है

उस काल विशेष के समान। साहित्य के संदर्भ में देखा जाए तो 'समकालीन' का अर्थ होता है उस काल विशेष की या युग विशेष की विशेषताओं से युक्त साहित्य। सामाजिक प्रवृत्तियों का आकलन साहित्य में विशेष रूप से होता है, अतः उस विशिष्ट सामाजिक प्रवृत्तियों से युक्त साहित्य 'समकालीन साहित्य' कहा जाएगा। हिन्दी आलोचना में 'साठोत्तरी' की भांति 'समकालीन' शब्द भी रूढ़ हो गया है। सन् 1980 या सन 1985 के बाद के हिन्दी साहित्य को 'समकालीन' संज्ञा दी गई है। किन्तु यहाँ भी यह स्पष्टता अनिवार्य बन जाती है कि जिन रचनाओं में समकालीन-चेतना की उपस्थिति हो उसी को समकालीन साहित्य के अंतर्गत रखना चाहिए। आधुनिक समय में लिखी गई प्राचीन भाव बोध युक्त रचना को समकालीन नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत अध्याय में हमने दलित काव्य परंपरा के अंतर्गत समकालीन दलित कवियों की रचनाओं का आकलन करने का प्रयास किया है। समकालीन दलित काव्य परंपरा के अंतर्गत अनेकानेक कवियों ने अपनी रचना से दलित कविता साहित्य को समृध्ध किया है। अपने अध्ययन की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए हमने यहाँ कुछ प्रमुख दलित कवियों की काव्यकला का आकलन किया है।

4.1.1 डॉ॰ ओमप्रकाश वाल्मीकि

कवि और कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि को हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा में सम्मानीय स्थान प्राप्त है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म जनपद मुजफ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰) के बरला गाँव में 30 जून 1950 को दलित समाज की सबसे अधिक उपेक्षित एवं तिरष्कृत जाति भंगी जाति में हुआ। अपनी इस जाति की वजह से वे अपने जीवन में दलित जीवन के नारकीय यथार्थ के भुक्तभोगी रहे हैं उन्होंने अपने परिवेश को बड़ी संवेदनशीलता से अनुभव किया है। एम॰ए॰ तक शिक्षा प्राप्त कवि ओमप्रकाशजी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कविताओं, कहानियों, आत्मकथाओं, नाटकों व संस्मरणों के द्वारा अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया है।

पिता छोटनलाल तथा माता श्रीमती मुकन्दी देवी के पुत्र वाल्मीकिजी ने रक्षा मंत्रालय (भारत सरकार) के उत्पादन विभाग में कार्यरत रहते हुए भारत के विभिन्न भागों में सेवा की है ।

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की दृष्टि से उनका साहित्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है । उनकी प्रमुख कृतियों में- ‘ सदियों का संताप ’ , ‘ बस्स ! बहुत हो चूका ’ (काव्य संग्रह) तथा ‘ जूठन ’ (आत्मकथा) , ‘ सलाम ’ तथा ‘ घुसपैठिए ’ (कथा संग्रह), तथा ‘ दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र’ , ‘ मुख्य धारा ’ और दलित साहित्य (आलोचना) , सफ़ाई देवता (समाजशास्त्र अध्ययन) उल्लेखनीय हैं । इसके उपरांत उन्होंने ‘ Why I am not a Hindu ‘ (Kancha Ellayya) का हिन्दी में अनुवाद भी किया है । साथ ही ‘ दलित हस्तक्षेप ’ (रमणिका गुप्ता) , प्रज्ञा साहित्य (अतिथि संपादन) , और ‘ तीसरा पक्ष ’का संपादन कार्य भी किया है । देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर सम्मानपूर्वक स्थान पानेवाले ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने अब तक 60 से भी अधिक नाटकों में अभिनय भी किया है । इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है । लेकिन अन्य विधाओं की अपेक्षा उनका कवि ह्रदय कविता में अधिक रमा है । उनका आत्मकथा लेखन भी बेजोड़ है । वाल्मीकिजी की रचनाओं में यथार्थबोध विशेषरूप से उल्लेखनीय है । उनकी कविता में जो चिंतन प्रस्तुत होता है , वह हमारी विचारधारा को झकझोरकर हमारी चेतना पर वार करता है और सोचने के लिए मज़बूर कर देता है । ओमप्रकाश वाल्मीकिजी की कविता के संदर्भ में डॉ॰ रजतरानी ‘ मीनू ’ का कहना है कि- “ कवि वाल्मीकि की कविता ‘ स्वान्तः सुखाय ’ नहीं अपितु जनहिताय की, व्यापक सामाजिक जीवन परिवेश की परिचायक है । ये यथार्थ दुःखों , संतापों के प्रमाणिक व खुले दस्तावेज भी है । ” [1] कवि वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं के द्वारा दलित साहित्य को और समृद्ध एवं प्रभावी बनाया है ।

अन्य दलित साहित्यकारों के समान वाल्मीकिजी ने भी समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था का आक्रोशपूर्ण विरोध किया है । धर्म ही वर्ण-व्यवस्था का मूल स्त्रोत है, अतः उन्होंने हिन्दू धर्म एवं दर्शन पर प्रहार करते हुए कहा कि-

" तुम्हारे रचे शब्द / तुम्हें डसेंगें साँप बनकर
गंगा के किनारे कोई वट वृक्ष ढूँढ लो कर लो भागवत का पाठ
आत्मसंतुष्टि के लिए / कहीं अकाल मृत्यु के बाद भयभीत आत्मा
भटकते / भटकते / किसी कुत्ते या सुवर की मृत देह में प्रवेश न कर जाए
या फिर पुनर्जन्म की लालसा में / किसी डोम या चूहड़े के घर पैदा न हो जाए । " [2]

उन्होंने सामाजिक विषमताओं का यथार्थ एवं बेबाक चित्रण किया है । समाज के एक बहुत बडे हिस्से को मानवोचित अधिकारों से वंचित रखनेवाले देश के लोकतंत्र पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए वे कहते हैं कि-

" जब तक रामसेरी के हाथ में / खडांग- खडांग घिसटती लौह गाड़ी है-
मेरे देश का लोकतंत्र / एक गाली है । " [3]

समाज व्यवस्था की दूषित एवं मनुवादी जड़ों पर कवि ने सीधा हमला किया है । उन्होंने दलित जीवन की पीड़ा को लोकभोग्य बनाया है और इन यथार्थों को सामने रखकर भद्र समाज से पूछा है कि तब तुम क्या करोगे ?

" यदि तम्हें / नदी के तेज बहाव में / उलटा बहना पड़े / दर्द का दरवाजा खोलकर भूख से जूझना पड़े / भेजना पड़े नयी-नवेली दुल्हन को /पहली रात ठाकुर की हवेली
तब तुम क्या करोगे ? " [4]

सामाजिक यथार्थ की निर्भीक अभिब्यक्ति को आगे बढाते हुए ओमप्रकाशजी ने वेधक सवाल किये हैं-

"चूल्हा मिट्टी का,मिट्टी तालाब की/तालाब ठाकुर का/भूख रोटी की ,रोटी बाजरे की । बाजरा खेत का , खेत ठाकुर का / बैल ठाकुर का , हल ठाकुर का , हल की मूंठ पर रखी हथेली अपनी / फ़सल ठाकुर की,कुआं ठाकुर का / पानी ठाकुर का , खेत-खलिहान ठाकुर के/गली-मुहल्ले ठाकुर के/फिर अपना क्या ? गाँव ? शहर? देश ?" [5]

कवि ने इस कविता के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि आज़ादी मिलने के बाद भी दलितों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ है । वाल्मीकिजी की इस कविता के संदर्भ में डॉ॰ मेनेजर पाण्डेय का कहना है कि- " ठाकुर का कुआं, ' कुआं ' नहीं बल्कि सारा हिन्दू समाज है । जिसमें अछूतों को डूब मरने की तो सुविधा है , पीने के लिए पानी लेने की नहीं । " [6]

भारतीय समाज की यह बदकिस्मती है कि दलितों को डुबो देने की यह वृत्ति, आज़ादी के बाद भी कम नहीं हुई है । बल्कि दलित उत्पीड़न के नये नये रास्ते और तरीके निकल आये हैं । पहले सिर्फ 'कुआँ' था अब बहुत से नाले , नहरें बनायी गयी हैं । इसी के परिणाम स्वरूप हाड़तोड़ मेहनत करनेवाले इस कर्मठ मानव की किस्मत में जीवन की प्राथमिक जरूरतें (रोटी,कपड़ा और मकान) भी नहीं है । 'मानचित्र' कविता में कवि वाल्मीकि ने इसी यथार्थ का हृदयविदारक चित्रण किया है ।

" राम बिरिज का छोटा लल्ला / दूध के लिए रोता है / बदले में थप्पड़ खाकर
चुपचाप सो जाता है । " [7]

थप्पड़ खाकर सो जाने वाला छोटा लल्ला (दलित समाज) समाज की निर्दयता एवं निष्ठुरता से परिचित होकर उसका विरोधी बन जाता है । उसके अंदर गुस्सा , मोहभंग जैसी असंतोषकारी प्रवृत्तियों जन्म लेती हैं और वह समाज के विरूद्ध संघर्ष एवं विद्रोह कर देता है । समाज को यही चेतावनी देते हुए कविने कहा है कि- " मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर / खोद लिया है संघर्ष ।
जहाँ आंसुओं का सैलाब नहीं / विद्रोह की चिंगारी फूटेगी ।
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में / तनी मुठ्ठियाँ / तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी । " [8]

समाज में उच्चवर्ग की प्रतिष्ठा एवं सत्ता को देखकर सर्वहारा दलित जिस वेदना , जिस दुःख का अनुभव करता है , वह वाल्मीकिजी की 'ज्वालामुखी' नामक कविता में व्यंग्यात्मकता से चित्रित हुआ है । यथा-

" उँची- ऊँची अट्टालिकाओं के कहकहे / सफ़ेदपोश नेताओं के भाषण

चौराहे पर गांधी का पुतला / गलियों में / समाजवाद का नारा
मेरा मन बहला रहा है । ” [9]

दलित समाज सदियों से पीड़ित एवं प्रताड़ित होता आया है । भद्र समाज ने उसका पूरा नूर छीन लिया है । समाज ने सदा ही इसकी उपेक्षा की है, लेकिन यह भी समाज का एक अभिन्न अंग है जो अत्याचारों को झेलकर अपने अस्तित्व से जूझ रहा है । यह दीपक है , जिसकी रोशनी पर भद्र समाज ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया है । कवि कहते हैं कि-

“ अंधेरे में , कालिख पुता मेरा जिस्म / जिसे तुमने अपवित्र घोषित कर दिया
तिल-तिल जल रहा है तुम्हें रोशनी देने के लिए ।
किंतु इतना याद रखो / जिस रोज इंकार कर दिया / दीया बनने से मेरे जिस्म ने
अंधेरे में खो जाओगे / हंमेशा-हंमेशा के लिए । ” [10]

यह सर्वविदित सत्य है कि वाल्मीकिजी की कविताएँ दिल को झकझोरती हैं , चुभती हैं । उन्होंने अपनी भुक्तभोगीता का जो वर्णन किया है वह किसी सह्रदय पाठक को आत्ममंथन के लिए मजबूर करने में शक्तिमान है । इस दृष्टि से ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता दलित चेतना से ओतप्रोत है ।

4.1.2 डॉ० जयप्रकाश कर्दम

दलित यातना के बेबाक चितेरे एवं दलित साहित्य के प्रथम उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम का जन्म 5 जुलाई , सन् 1958 में गाज़ियाबाद के इन्द्रगढ़ी ग्राम के एक दलित परिवार में हुआ । दलित एवं उनका दमन जयप्रकाशजी के रचनाकर्म के केन्द्र बिंदु रहे हैं । उनकी महत्वपूर्ण प्रकाशित कृतियाँ है - ‘ वर्तमान दलित आंदोलन ’ (विचार प्रबंध) , ‘ अम्बेडकरवादी आंदोलन ’ , ‘ दशा और दिशा ’ (विचार प्रबंध) , ‘ करूणा ’ और ‘ छप्पर ’ (उपन्यास) , ‘ बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ ’(जीवनी)‘ चमार ’ तथा ‘ गूंगा नहीं था मैं ’ तथा ‘तिनका-तिनका आग’ (काव्य संग्रह) ,‘ तलाश’ (कहानी संग्रह) आदि प्रमुख हैं । उन्हे अपने रचनाकर्म के लिए कई सारे सम्मान भी मिले हैं ।

दलित कविता के क्षेत्र में उन्होंने अपने पहले काव्य संग्रह ‘ गूंगा नहीं था मैं ’ के साथ प्रवेश किया । वे दलित दमन के यथार्थ एवं बेबाक चित्रण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । उनकी कविताएँ अपने आप में विद्रोह की चिंगारियाँ है । दमन से त्रस्त वे कह उठते हैं कि -

“ यदि यही रहा मेरे / दमन और शोषण का हाल तो / आज नहीं तो कल
हरकत में ज़रूर आएँगे / मेरे हाथ ” [11]

कवि का यह आक्रोश, यह विद्रोह कभी-कभी तो ज्वालामुखी बनकर फट पडता है ।

“ तमाम विरोधों और दबावों के बावजूद / जाति के जंगल का यह जीव
अपनी मुक्ति के लिए अड़ा है / अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए लड़ा है
और आज / तमाम होंसलों के साथ / हाथों में खंजर लिए वह
दमन की दहलीज पर खड़ा है / और ललकार रहा है चीखकर
बाहर निकल हरामजादे / तेरी ऐसी की तैसी । ” [12]

कवि कर्दमजी दलित वेदना के भुक्तभोगी रहे हैं और यही अनुभूति उनकी लेखनी का प्राणतत्व है । कमियों और अभावों से भरी दलित जिंदगी को उन्होंने अपनी ‘ लालटेन ’ नामक लंबी कविता में कलमबद्ध किया है वे कहते हैं कि-

“ यूँ आर्थिक तंगी के कारण / कभी-कभी हफ्तों तक / बिना छुकी-भुनी सब्जी भी
हमारे घर नहीं बनती थी / प्रायः नमक के चावल / या उबले हुए आलू
नमक के साथ / हम लोग खाते थे / हमसे जो बचता, माँ वह खाती थी
यानी हम सब की जूठन से ही / वह अपना पेट भरती थी
कभी-कभी भूखी भी रह जाती थी । ” [13]

दलित को कदम-कदम पर सर्वणों का अमानवीय व्यवहार सहन करना पड़ता है । वे चाहकर भी उसके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठा सकते वे मजबूर हैं पता नहीं क्यों ? अपनी रचना ‘ गूंगा नहीं था में ’ कवि ने इस मज़बूरी का चित्रण करते हुए कहा है कि -

" गूंगा नहीं था में / कि बोल नहीं सकता था / जब मेरे स्कूल के
मुझसे कई क्लास छोटे / बेढंगे से एक जाट के लडके ने / मुझसे कहा था-
" अरै ओ मोरिया ! / ज्यादै बिगड़ै मत / कमीज कू पेंट में दबा कै / मत चल। "
और मेने चुपचाप अपनी कमीज़ / पेंट से बाहर निकाल ली थी । " [14]

क्योकिं, अगर इसके सामने वे चूं कर देते तो सारे सवर्ण छात्र उनकी पिटाई करते और स्कूल परिसर में धांधली मचाने के जुर्म में उन्हीं को स्कूल से निकाल देने का बहाना मास्टरजी को मिल जाता । स्कूल के मास्टरजी भी आखिर उसी मनु भगवान के अनुयायी जो थे । वैसे तो विद्यालय एकता-समता-भाईचारा जैसे मानवीय मूल्यों की शिक्षा देता है लेकिन इन मूल्यों के दायरे में शायद दलित नहीं होते । तभी तो ' वर्णवाद का पहाड़ा ' नामक रचना में कवि कर्दमजी लिखते हैं कि-

" मास्टरजी ! / हम शुक्र गुजार है कि तुमने / हमें पढ़ाया ,
प्रगति का रास्ता दिखाया / लेकिन समता के मार्ग पर तुम
खुद नहीं चल पाए / हमने रखा तुम्हें / वर्ण और जाति से ऊपर
पर नहीं उठ पाए तुम अपनी / जातीय अहंमन्यता की संकीर्णता से
तुमने सुनायीं हमें / प्रेम की कहानियां / सिखाया भाई-चारे का सबक
जगाए तुमने राष्ट्रीयता के भाव भी / हमारे भीतर / लेकिन,नहीं चूक पाए तुम
पढ़ाने से / वर्णवाद का पहाड़ा । " [15]

जयप्रकाश कर्दमजी की कविताओं में जहाँ एक और दलित जीवन का यथार्थ चित्रण , शारीरिक और मानसिक पीड़ा को बढ़ाते हुए वर्णवाद के चूभते दंश , दलित जीवन की मजबूरियाँ और ' तेरी ऐसी की तैसी ' करनेवाली धधगती चिंगारियाँ मिलती है , वहीँ दूसरी तरफ उनकी परवर्ती कविताओं में एक सुलझा हुआ कवित्व और संयमित इन्सान की आभा भी दृष्टिगत होती है । इतने जुल्मों-सीतम को सहने के बाद भी वह ' किल ' नामक अपनी रचना में कहते हैं कि-

" इनकी महफिलों में मनते हैं / मेरी बर्बादियों के जश्न , और

इनके माथे पर खिचीं है मेरी / अस्पृश्यता की लकीर / जी करता है
ध्वस्त कर दूँ इन किलों को / चिन्दी-चिन्दी कर दूँ / इनका वजूद , कि
शांत हो जाए / मेरी अन्तर की धधकती हुई / अपमान की आग और
मिल जाए / मेरे मन को शकून , लेकिन / नहीं जाने देती मुझे वहाँ तक
मेरी चेतना/रोक लेती है मेरे क़दमों को /बेड़ी बनकर/ मेरे पूर्वजों की सीख कि
हिंसा नहीं है हिंसा का जवाब । ” [16]

कर्दमजी की कविता के सरोकार और निरंतर प्रौढ़ होता शिल्प आश्वस्त करता है कि वे भविष्य में और अच्छी रचनाएँ हिन्दी दलित काव्य को प्रदान करेंगे और इनके कृतित्व से दलित साहित्य दलित चेतना का प्रभावी वाहक बनेगा ।

4.1.3 डॉ० श्यौराजसिंह ‘ बेचैन ’

5 जनवरी 1960 को उत्तर प्रदेश के बदायूँ जनपद के नदरौली ग्राम में जन्मे डॉ० श्योराज सिंह बैचेन दलित साहित्य के क्षेत्र में एक सम्माननीय स्थान रखते हैं । बचपन में ही पिता की मृत्यु की वजह से परिवार की आर्थिक स्थिति डगमगा गई और परिणाम स्वरूप शुरू में वे स्कूली शिक्षा से वंचित रहे । बाद में अपने गाँव के कविता प्रेमी शिक्षक प्रेमपाल सिंह यादव की व्यक्तिगत सहायता से विद्यालय में दाखिल हुए । छात्र जीवन में ही वे काव्य रचना एवं काव्य पाठ के लिए मशहूर हुए । अपने जीवन के दौरान उन्होंने महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर की कई प्रतियोगिताएँ जीतीं । साथ ही साथ ‘वैज्ञानिक विचारिक केन्द्र’,‘सामाजिक परिवर्तन केन्द्र ’ एवं चन्दौसी के ‘ शोषित समाज संघर्ष समिति ’ का सफल नेतृत्व किया ।

बैचेनजी का रचनाफ़लक विस्तृत रहा है । उनकी प्रकाशित कृतियों में ‘ फूलनदेवी की बारहमासी ’(राग मल्हार) , ‘ नई फसल ’ , ‘ क्रोंच हूँ मैं ’ (काव्य संग्रह) , ‘ हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव ’ (शोध प्रबंध) , ‘ अन्याय कोई परंपरा नहीं ’ , ‘ मूल खोजो विवाद मिटेगा ’ (दोनों अनुवाद) आदि प्रमुख है ।

डॉ॰ बेचैन जनआंदोलनों के सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं इसलिए सामाजिक परिवर्तन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उनके रचनाकर्म में सर्वत्र झलकती है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बैचेन का जीवन संघर्ष ही उनकी रचनाओं की आत्मा है । डॉ॰ वीरेन डंगवाल के शब्दों में- " अपने पाठकों के बारे में श्यौराजसिंह साफ़ है वे गाँव के किसान मजदूर हैं । शहर के पढ़े-लिखे , अनपढ़ कुजात कहलाने वाले उत्पीड़ित तबकों के लोग, कारीगर, फैक्ट्री के मजदूर हैं, क्योंकि अब तक की उम्र का काफ़ी हिस्सा उन्होंने उन्हीं के साथ उन्हीं की तरह बिताया है । " [17]

डॉ॰ बेचैन का अनुभव क्षेत्र बड़ा ही विशाल है । समाज सुधार का प्रयत्न और अदम्य आकांक्षा उनकी रचनाओं का प्राणतत्व है। भारतीय समाज व्यवस्था पूरी तरह से असमानता और अन्याय पर आधारित है । पूरा समाज जातीय और उपजाति के टूकड़ों में विभक्त है । ऐसे विभक्त समाज का चित्रांकन करते हुए वे कहते हैं कि - " बड़ी उदास रात है / न मेले हैं न प्यार है / जलाओ दीप साथियों कि घोर

अंधकार है / राग सब जुदा-जुदा / सुना रही हैं जातियाँ / जला हमारा खून-दिल / न दीप हैं न बातियां / एकता- समानता का / बेसुरा सितार है । " [18]

कवि बैचेन एक जनकवि हैं । उनकी कविताओं में दुरूह शब्दावली या शब्दों का मायाजाल नहीं बल्कि उनकी कष्टदायी जिंदगी देखने को मिलती है । उनकी रचनाएँ समाज और व्यक्ति के दोहरे चरित्र पर व्यंग्य करती है -

" तुम उदार थे / गाय के प्रति / और हम थे आदमी की / शक्ल में निरे
गाय / हमने दिया दूध / खाया घास फूंस / और दी / अपनी सन्तानें /
इंसानी शक्लों में / बैल बनाने के लिए / मुर्खता के कोल्हू मैं /
जुतने-खपने के लिए / पीढ़ी-दर-पीढ़ी / बैल ही बने वे हमारे पूर्वज
हम / और संतानें भी / और तुम / स्वामी अनुदार / स्वार्थी /ढोंगी अपार।" [19]

दलित साहित्य के मुखर एवं प्रचंड प्रभाव से आंखे चुराने का काम पहेले भी होता था और आज भी हो रहा है । आज भी इस सच से बचने के लिए कई 'बौद्धिक' तरकीबें

आजमाई जा रही हैं। कवि बेचैन दलित जीवन के उस सच के भुक्तभोगी रहे हैं , जो दलित जीवन को अमानवीय एवं दयनीय बना देता है , शायद इसीलिए वे अपने दारुण बचपन को वापस न आने को कहते हैं -

> " पेट भरने के / लिए क्या-क्या नहीं / मैंने किया ? / ज्ञान की थी
> भूख मेरे साथ / लोग बचपन के लिए आवाज देते हैं / कि वह लौटे-
> उजालों की करे बरसात / पर ओ , मेरे दुखों भरे बचपन / न आ , नहीं लौटा
> पुराने दर्द की काली रात। " [20]

भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद ही भारत को खोखला कर रहा है। यह जाति का जंगल जब तक नष्ट नहीं होगा तब तक भारत को चैन नहीं मिलने वाला , सच्ची आज़ादी नहीं मिलने वाली

> " जब तक / जीवन जंगलीपन है / तब तक धर्म विवाद रहे
> तब तक मुमकिन नहीं कि / भारत / सुखी रहे , आज़ाद रहे। " [21]

क्योकिं कवि बेचैन एक समाज के सेवक और लोकनेता भी रहें हैं , उनकी रचनाओं में इस कुंठित एवं मनुवाद से ग्रसित सामाजिक व्यवस्था के प्रति विरोध और विद्रोह के स्वर तो मुखर हुए ही हैं , लेकिन वे इस समाज व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं और यह परिवर्तन की आशा किसी और से नहीं बल्कि अपने आप से ही है। दलित चेतना को परिवर्तन की चिंगारी बनाती हुई कविता ' हम बदलेंगे ' में वे कहतें हैं कि -

> " मुँह में राम / नज़र में कुर्सी / छापा-तिलक / जनेऊधारी / छाती पर से
> उठो , अन्यथा / लतिया देंगे / नई सदी में / बंधन तोड़ के / मुक्ति द्वार पर
> दस्तक देंगे। / इच्छित और अपेक्षित / दुनिया हमीं रचेंगे / और बदलने
> वाली चीजें हम बदलेंगे। " [22]

सारांश रूप हम कह सकते है कि श्योराजसिंह बेचैन जेसे सशक्त हस्ताक्षर पाकर दलित साहित्य और प्रभावी और वेधक एवं और चोटदार बन गया है।

4.1.4 डॉ० मोहनदास नैमिशराय

कथाकार , समीक्षक , नाटककार , कवि डॉ॰ मोहनदास नैमिशराय को दलित साहित्य का हठयोगी साहित्यकार कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती है क्योंकि , वे अपने जीवन में दलित संवेदनाओं के कारण लम्बे समय तक उपेक्षित , अपमानित और प्रताड़ित होते रहे फिर भी उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज का नंगा सच लिखा , यह अपने आप में एक हठयोग का ही उदाहरण है । इस निडर , बेबाक कवि का जन्म 5 सितम्बर 1949 मेरठ में हुआ था । उन्होंने पत्रकारिता एवं लेखन को ही पूर्ण रूप की कैरियर की तरह अपना लिया ।

उनकी अब तक की प्रकाशित कृतियाँ है- ‘ अदालतनामा ’(नाटक) 1989 , ‘सफ़दर एक बयान’ (कविता संग्रह) 1989 , ‘ क्या मुझे खरीदोगे ? ’ (उपन्यास) 1990 , ‘ भारत रत्न डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ’ (चित्रमय पुस्तक) 1990 , ‘ अपने-अपने पिंजरे ’ (आत्मकथा) 1995 , ‘ आत्मदाह ’ , ‘ संस्कृति : उदभव और विकास ’ 1991 , ‘ बाबा साहब और उनके संस्मरण ’ 1993 , ‘ अम्बेडकर डायरेक्टरी ’ 1993 , ‘ उजाले की ओर ’ 1997 , अपने-अपने पिंजरे (भाग-2) 2000 । इसके अतिरिक्त उन्होंने डॉ॰ अम्बेडकर की दो पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है - 1॰ हिंदुत्व का दर्शन , 1991 और 2॰ डॉ॰ अम्बेडकर और कश्मीर समस्या , 1997 ।

कवि श्री मोहनदास नैमिशराय के इतने विस्तृत रचनाकर्म की रीढ़ है तटस्थता , ईमानदारी , स्पष्टता एवं प्रामाणिकता । उनके साहित्य में यथार्थबोध एवं आत्मानुभूति विशिष्ट तत्वों के रूप में उभरे हैं । उनके लेखन की इसी विशेषता के कारण डॉ॰ एन॰ सिंह कवि श्री मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा ‘ अपने-अपने पिंजरे ’ को किसी दलित लेखक की पहली आत्मकथा मानते हैं । डॉ॰ एन॰ सिंह कहते हैं कि - “ आत्मवृत लिखने के लिए जिस प्रकार की तटस्थता , ईमानदारी , स्पष्टता , प्रमाणिकता , निर्ममता और बेबाकी की आवश्यकता होती है , हिन्दी में अपने हिन्दू

संस्कारों के कारण उसका सदैव अभाव ही रहा है । शायद इसलिए हिन्दी में किसी एक भी साहित्यकार की अच्छी आत्मकथा उपलब्ध नहीं है । इस दौर में इस अभाव की पूर्ति भी दलित साहित्यकारों ने ही करने की ठानी और हिन्दी में किसी दलित लेखक की पहली आत्मकथा ' अपने-अपने पिंजरे ' हमारे सामने है । [23]

कवि श्री मोहनदास नैमिशराय ने दलित होने के संत्रास को झेला है । बचपन में ही माँ का स्वर्गवास , पड़ोशियों की सहानुभूति के सहारे पलना-बढ़ना , स्कूल में अध्यापकों द्वारा बार-बार जाति विषयक अपमान करना , दरिद्रता-विवशता एवं विपन्नता से जूझना , गाँव में प्रेम-भंग होने पर बम्बई भाग आना और वहीं माहिम के समंदर के किनारे पड़ी लावारिस लाश को देखकर वहीं पर बैठकर अपनी पहली कविता लिखना – ये सब श्री नैमिशरायजी के जीवन के ऐसे मोड़ हैं , जहाँ प्रत्येक मोड़ पर हुई आत्मानुभूति उन्हें अपने रचनाकर्म के लिए प्रेरित करती रही है ।

कवि त्रिवर्णों के ताड़न के भुक्त भोगी रहे हैं । उन्होंने अपने जाति बंधुओं की दर्दनाक दास्तानों का तादृश चित्रण करते हुए अपनी कविता ' एक शव का बयान ' में लिखा है कि -

" मौत से झूझते हुए दर्दनाक पल / और पानी में डूबती - उतरती लाशें
हम सभी विवश थे / कुछ पल बाद / हम सब / ज़िन्दा आदमी से
शवों में बदल गए थे / और ज़िन्दा कौम का इतिहास
मुर्दों के बीच लिख रहे थे । " [24]

श्री नैमिशरायजी की कविताओं में समाज-परिवर्तन एवं मानव-मानव समानता की चीख है , गूंज है । इस समानता में बाधक तत्वों से ये दो-दो हाथ करती नज़र आती है । निश्चित रूप से इनकी कविता के तेवर तेज़ है । कवि ऐसे ईश्वरत्व को मानने को तैयार नहीं जो मानव-मानव में भेदभाव करे , जो किसी निरीह मानवों को पशु से भी बदतर जीवन के लिए मजबूर करे । शूद्र के घर जन्म लेनेवाला आजीवन ताड़न का अधिकारी बन जाता है , ऐसे माहौल में कवि कह उठते है कि -

" ईश्वर की मौत / उस पल होती है / जब मेरे भीतर उभरता है सवाल
ईश्वर का जन्म / किस माँ की कोंख से हुआ था ?
ईश्वर का बाप कौन है ? " [25]

कवि की ऐसी ' नास्तिकता ' के पीछे उनका भोगा हुआ यथार्थ है । कविने अपने भीतर पनपते आक्रोश को निर्द्वन्द्व बहाव दिया है । इनकी कविता में दलित चेतना का रौद्र स्वरूप देखने को मिलता है , क्योंकि यही यथार्थ है । श्री नैमिशरायजी का मानना है कि- " दलित साहित्य मन बहलाने के लिए नहीं लिखा जाता । वह मानसिक अय्याशी का माध्यम भी नहीं । वह तो सामाजिक विषमता भोग रहे लोगों का साहित्य है , इसलिए इसे दलित साहित्य कहा गया है । इस साहित्य में जितने आंदोलन तथा चेतना के तेवर तेज होंगे उतना ही उसका मार्ग प्रशस्त होगा।" [26] दलित साहित्य सार्थक एवं सफ़ल इसलिए है , क्योंकि वह समाज में सुखद परिवर्तन का प्रेरणास्त्रोत बनता है । जहाँ वह दलितों को उनकी दयनीयता एवं प्रताड़ना से परिचित करवाता है,वहीं सवर्णों को उनके द्वारा किये गए अत्याचारों की प्रतीति करवाकर उनसे पश्चाताप की आकांक्षा रखता है । कवि इसलिए कहते हैं कि -

" साहित्य और कला को / विलासिता के दायरे से निकाल
चाकू जैसी धार देनी है उसे / अपनी मुखर आव़ाज के साथ
परिवर्तन के शिखर पर पहूँचना है । " [27]

दलित सदियों से आहत एवं प्रताड़ित है । उसके ज़ख्मों को बार-बार कुरेदा जा रहा है । जाति के नाम पर उस पर मनमाने अत्याचार किये जा रहे हैं । ऐसे माहौल में दलित साहित्य दलितों के लिए अमोघ शस्त्र बन पड़ा है । अपनी रचनाओं के द्वारा वह पुरानी सड़ी-गली परम्पराओं से लोहा ले रहा है । ये साहित्य , ये शब्द ही उसकी ताक़त बनता जा रहा है , इसलिए कवि श्री मोहनदास नैमिशराय ने इस ' हथियार ' की धार को तेज करने के लिए कहा है -

" शब्दों के आंदोलन की धार / तुम्हें और तेज करनी होगी
क्योंकि तुम्हारे ज़ख्मों को / फिर से कुरेदा जा सकता है ।
तुम्हारे पास केवल शब्द है / संघर्ष को जारी रखने के लिए
वही तुम्हारी उर्जा है । " [28]

कवि इन्हीं शब्दों की आग से समाज की क्रूर रीति-नीतियों के मकड़जाल को जला देना चाहता है , जो दलितों के दर्प-दलन का माध्यम बना हुआ है । कवि जानते हैं कि यह समस्या सामाजिक से अधिक मानसिक है । त्रिवर्णों का मानसिक परिमार्जन करना अत्यंत आवश्यक है , तभी वह अपराध बोध की अनुभूति कर पाएँगे । मनुस्मृति की छत्रछाया में पली-बढ़ी इस अमानवीय संस्कृति को ध्वस्त करने के लिए ब्राह्मणवादी मानसिकता को तोड़ना ही अत्यंत ज़रूरी लगता है । इसलिए कवि नैमिशरायजी कहते हैं कि -

" अकेले मनुस्मृति को जलाने से / समाज की जड़ता पर कुछ होनेवाला नहीं है ।
तुम्हारे भीतर की बेशर्म संस्कृति / के बिच पली - बढ़ी
ब्राह्मणी कम्प्यूटराइज्ड़ मेमोरी को ध्वस्त करना होगा । " [29]

डॉ॰ नैमिशराय की कविताओं में जितना आक्रोश एवं विद्रोह दिखाई देता है , उतना ही राष्ट्र-चेतना एवं राजनैतिक चेतना का स्वर भी तीव्र है । उनकी कविताओं में राजनीति के दोगलेपन और समाज को दीमक की भाँति कुतरने की वृत्ति का बेबाक चित्रण हुआ है ।

आज देश के हर नागरिक की कीमत एक वोट या मत से अधिक कुछ भी नहीं है । वोट बटोरने के लिए राजनेता शाम - दाम - दंड - भेद किसी भी प्रकार की प्रयुक्तियाँ अपनाते हैं । अगर सीधी ऊँगली से घी नहीं निकलता तो –

" लोकतंत्र के सीने पर / दस्तक देनेवाले
चुनावी त्यौहार के दिन हमलावर बनकर / सारे देश में बिखर जाते
भाले और नेजे लिए / कहीं हलाकू और चंगेज खां में बदल जाते । " [30]

कवि ने राजनीति की ऐसी हिंसक वृत्ति का विरोध भी कलम से ही करने का आह्वान किया है , क्योंकि कलम तलवार से ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रभावी होती है । कवि ने शब्द की ताक़त को पहचाना है और इसी शब्दशक्ति के सहारे उन्होंने नई क्रांति का आहवान किया है -

" याद रखो / उनके पास शब्द नहीं है / और संवेदनाएँ भी
कोरी बन्दूक और गोली से / कोई भी युद्ध नहीं जीता जा सकता
उनका निर्दयी इतिहास / सूखे दरख्त़ के समान / तुम्हारे सामने खड़ा है
जिसे तुम अपने शब्दों की आँच / से ही जलाकर खाक कर सकते हो । " 31

भारतीय समाज के लिए धर्म एक विडंबना के रूप में ही ज्यादा प्रतीत होता आया है । धर्म ने वर्ण बनाकर मानव-मानव में भेद उत्पन्न करके दलितों को नर्कागार में धकेल दिया है , वहीं धार्मिक कट्टरता ने एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्म के लोगों का शत्रु बना दिया है । धर्म की आड़ में दंगे-फ़साद अब आम बात बन गई है , क्योंकि हर व्यक्ति यही मानता है कि मेरा धर्म ही सर्वश्रेष्ठ एवं सच्चा धर्म है और इसी अल्पज्ञान का फ़ायदा उठाकर राजनेता इनको आपस में लड़वा-भिड़वाकर अपना निजी स्वार्थ सिद्ध करते हैं । कवि नैमिशरायजी ने समाज में फैली ऐसी धार्मिक दावाग्नि की राख भरे माहौल का तादृश चित्रण किया है -

" उसी राख को रौंदते हुए / कौम की खिदमत करने
अपने-अपने परचम लिए / हम निकल पड़ते हैं । " 32

हमारे इसी धार्मिक उन्माद का बेजा फ़ायदा उठाकर राजनेता मोटे पड़ते हैं और अपना स्वामित्व कायम रखते हैं । ये गिरगिट दंगे करवाकर बादमें शांति आयोजनों के द्वारा लोगों की सहानुभूति प्राप्त करके वोट बटोरते हैं -

" बात एक ही है / पहले सांप्रदायिक दंगे कराओ
फिर शांति मार्च के ढेर सारे आयोजन / सच यही है
कब्रों पर फूल उगाने जैसा । " 33

कवि मोहनदास नैमिशरायजी ने देश के ऐसे माहौल के लिए आँसू बहाए हैं। उन्होंने देश के विकास-पथ की ऐसी बाधाओं से मुक्ति चाही है। धर्म के नाम पर आपस में लड़नेवाले अपने देशवासियों के प्रति वे चिंतित है। वे कह उठते हैं कि -

" चर्च से मरघट तक / मंदिर से गुरुद्वारों तक / संसद से सड़क तक
खेतों से क्लब तक / लोगों पर जूनून / क्यों है यह सवार
दंगे क्यों होते हैं बार-बार...? " [34]

इस प्रकार डॉ॰ मोहनदास नैमिशराय का रचनाकर्म अपने आप में विविधता एवं विशिष्टता लिए हुए है। उनकी कविताओं में दलित जीवन की आह-कराह के साथ-साथ उनका राष्ट्रीय एवं सामाजिक चिंतन भी स्पष्टरूपेण चित्रित हुआ है। निश्चय ही उनकी कृतियाँ दलित साहित्य की अनमोल निधि बनी रहेंगी।

4.1.5 डॉ॰ कुसुम ' वियोगी '

डॉ॰ कमलेश कुमार ' कुसुम' का जन्म 9 अक्तूबर, 1955 को सादाबाद गेट, हाथरस (उ॰प्र॰) में हुआ था। डॉ॰ वियोगी शिक्षा प्राप्ति करने के बाद केनेरा बैंक में भी कार्यरत रहे। दिल्ली में रहकर पत्रकारिता करते हुए उन्होंने कई पुस्तकों का संपादन तथा सृजन किया। प्रकाशित कृतियों में 'उत्थान के स्वर' (गीत संग्रह) , 'व्यवस्था के विषघर' (काव्य संग्रह),'चर्चित दलित कहानियाँ' आदि प्रमुख हैं उनकी अप्रकाशित कृतियां हैं- 'उठ रे ! बंधुआ', ' मुट्ठीभर दर्द ','बिंब से प्रतिबिंब तक' और 'दलित मुक्ति गीत ' आदि।

दलितों को पशुओं से भी बदतर जिंदगी बसर करवाने में 'धर्म' ने अपना पूरा-पूरा योगदान दिया है। धार्मिक संस्कार ही समाज में असमानता एवं मानव-मानव के बीच वर्ण एवं जाति की दीवारें बनाते हैं। समाज का हर मानव धर्म को जीता है और शायद इसीलिए दलित यातनाओं के रूप में खून के घूंट पीता है। डॉ॰ वियोगी ने ब्राह्मणों के इस षडयंत्र का बखूबी पर्दाफार्श किया है -

" ब्राह्मणी / व्यवस्था के विषघरों ने / आदमी ! / इस कदर पकड़ा है !

जन्म से लेकर / मृत्यु तक / संस्कारों में जकड़ा है । " [35]

जो धर्म समानता की नींव पर खड़ा न हो , उसे धर्म मानना ही नहीं चाहिए । कवि वियोगी ने इसीलिए धार्मिक पाखंडों एवं परंपराओं का तथा ' संस्कारों ' का खुलकर विरोध किया है ऐसे पक्षपाती धर्म के खिलाफ़ उनका गुस्सा फ़ट पड़ता है -

" कुत्ते , बिल्ली जानवर का विलोम / गाँधी के परिभाषित शब्दों में

' हरिजन ' हो गया है ! / कुत्ते , बिल्ली अथवा कोई जानवर

मंदिर , कुओं , पोखर एवं तालाबों में / पानी पी सकते हैं ।

परन्तु ! हरिजन आज भी ! / उस पर / चढ़ नहीं सकते !

मगर हाँ / एक बात सत्य है ! / उन पर ' मूत ' तो / अवश्य सकते हैं । " [36]

अपने ऊपर होते आये अमानुषी अत्याचार को दलित सदियों से सहता आया है । उसके खिलाफ़ आवाज़ उठाने की हिंमत नहीं जुटा पाता है । कवि का मानना है वह जब तक इस तरह भीगी बिल्ली बना रहेगा तब तक उसका शोषण बंद नहीं होगा , बल्कि उसकी यह कमज़ोरी या लाचारी अत्याचारियों को और अत्याचार करने के लिए प्रेरित करेगी । इसीलिए दलितों को नोंच-नोंचकर खानेवाली सामंती व्यवस्था को परिवर्तन की परिभाषा समझाने के लिए कवि वियोगी अपने दलित बंधुओं को ललकारते हैं -

" ओ ! दलित क्यों माँगता है ?/गिड़गिड़ाकर महेनत का मुआवजा

उठ और कर दे विद्रोह / बंधुआपन के विरुध्ध /छीन,इनसे मेहनत का मुआवज़ा / इसी का नाम परिवर्तन है .....

मिमियाने , गिड़गिड़ाने की भाषा / क्रूरता नहीं जानती.....

अच्छा हो उठ ! बोल अधिकार की भाषा / तब स्वयं समझ जाएगा

परिवर्तन की परिभाषा ? " [37]

अपने ज्ञातिबंधुओं की अकर्मण्यता पर कवि को भारो-भार खीज़ है । वह समझ नहीं पाता कि जाने वह कौन-सी मज़बूरी उनको संघर्ष एवं विद्रोह से रोकती है ? क्यूँ दलित विकास एवं उन्नति के रास्ते से कतराते है ? इस कमज़ोर एवं मजबूर मानसिकता को शिकार बनाकर कवि वियोगी कह उठते है कि -

" अब मैं तुम्हें ! जानता ही नहीं / वरन् / समझने लगा हूँ ! तुम्हारी मानसिकता !
सदियों से मैला ढ़ोते-ढ़ोते , बसिया गई है / गंध तुम्हारे भेजे में !
इसीलिए ! इत्र की सुगन्ध से / तुम्हे ! एलर्जी है ! " [38]

दलित साहित्य में आक्रोश , संघर्ष एवं विद्रोह तीन प्रमुख तत्व हैं । सामंती व्यवस्था के खिलाफ़ संघर्ष करके ही जीत पायी जा सकती है । अतः कविने दलितों को संघर्षरत होने के लिए ललकारा है -

" आओ आज करे संघर्ष ! / उसी से / जिसने किया ! अलंकृत
और हमें बनाया अछूत ! / जागो ! अरे ओ अभागों ! " [39]

कवि वियोगी की रचनाएँ दलित चेतना की अनुपम उदाहरण बन पड़ी हैं । कवि ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को निशाना बनाकर जैसे दलित चेतना के आर्थिक पक्ष के लगभग सभी सूत्रों को एक साथ बुनने का प्रयास किया है -

" तुम कितने पेटू हो / जो चबा जाते हो / कोयला , सरिया , सीमेन्ट
अन्न की बात तो दूर / निगल जाते हो पुल और बाँध / एक मैं हूँ ।
जो मकड़ी के सदृश्य / उलझकर झूलता रहता हूँ
अपने द्वारा निर्मित मकड़जाल में / सिर्फ / चन्द्रमा-सी गोल ,
दो रोटियों के चक्कर में / क्योकिं / मेरे भूख के भूगोल में
धरती चपटी नहीं / रोटियों सी गोल है / जिस पर चढ़ा दिया है
आवरण / संतुष्टि का / तुम्हारे द्वारा रचित विधि-विधानों ने । " [40]

समाज की अव्यवस्था एवं दुर्गति के लिए जिम्मेदार भ्रष्टाचार को उन्होंने अपने रचनाकर्म का आधार बनाते हुए लिखा है कि -

" भ्रष्टाचारियों ने / देश का / कैसा निकाला जनाजा !
गरीबों के लिए सरकार अनेक योजनाएँ बनाती हैं ,
लेकिन क्या गरीब उस योजना का पूरा और सही लाभ उठा पाता है ?
" गरीबी रेखा से / जीवन रेखा से / नीचे जीने वालों के लिये !
'मंत्रालय' से योजनाएँ / गंगा की भाँति आती हैं ! / भागीरथी के सिर ,
आते-आते सूख जाती है ! " [42]

इस प्रकार डॉ॰ वियोगी की रचनाओं ने दलित दिलों में संघर्ष की चिंगारी को हवा देने का काम किया है ।

4.1.6 डॉ॰ कँवल भारती

प्रखर दलित चिंतक एवं कवि श्री कँवल भारती का जन्म 4 फरवरी , 1953 को रामपुर (उ॰प्र॰) में हुआ था । एम॰ए॰ तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भारतीजी ने उत्तर प्रदेश के समाज कल्याण विभाग में अधीक्षक के पद पर नौकरी की । दलित साहित्य में उनके अनन्य योगदान के फल स्वरूप वे 1996 में डॉ॰ अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार तथा 2001 में भीम रत्न एवोर्ड से सम्मानित किये गए । साहित्यिक जीवन का प्रारंभ पत्रकारिता से करनेवाले भारतीजी ने दलित साहित्य को अपनी दलित चेतना से सराबोर रचनाओं के द्वारा समृद्ध किया है । उनके रचनाकर्म में प्रमुख है- 'दलित विमर्श की भूमिका'(चिंतन),' दलित चिंतन में इस्लाम ' (चिंतन) , ' मनुस्मृति : प्रतिक्रांति का धर्मशास्त्र ' , ' काशीराम के दो चहरे ' , ' तोडूँगी मौन ' , ' डॉ॰ अम्बेडकर को नकारे जाने की साज़िश ' ,' डॉ॰ अम्बेडकर : एक पुनर्मूल्यांकन ', 'लोकतंत्र में भागीदारी के सवाल ',' तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? ' (काव्यसंग्रह) , ' सन्त रैदास : एक विशलेषण ' वाल्मीकि वाणी (संपादन) । उन्होंने डॉ॰ अम्बेडकर की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों का काव्यानुवाद ' डॉ॰ आम्बेडकर की कविताएँ ' शीर्षक से किया है , जो कवि अम्बेडकर को हमारे सामने सजीव करने में सफल सिद्ध हुआ है ।

दलित जीवन के संतापों का प्रेरणा स्त्रोत धर्मशास्त्र ही है । धर्म-वचनों की दुहाई देकर दलितों को अमानवीय कार्य करने पर मजबूर किया जाता है । ऐसे ' धर्म ज्ञाताओं ' को कँवल भारतीजी ने सीधा प्रश्न किया है कि -

" यदि रामायण के राम / तपस्वी-धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का करते कत्ले-आम ।
तुलसीदास मानस में लिखते / पूजिए शूद्र सील गुन हीना
विप्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना / तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? " [43]

इसी क्रम में भारतीजी ने अपनी कविता 'तुम क्या कहोगे' में तथाकथित धर्म धुरंधरों की खूब खबर ली है । जो समानता का विरोध कर किसी एक वर्ग को अमानवीय यातनाएँ सहन करने का अधिकारी बना देता है , ऐसे धर्म , ऐसे देवता और ऐसे धर्मशास्त्रों पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है । धार्मिक उत्पीड़न और व्यवस्था के शिकार लोग यह पूछ रहे हैं कि -

" जिसमें जन्म लेते ही / अभिशप्त हो जाते हैं अस्पृश्यता से
लागू हो जाती है निर्योग्यताएँ / दासता बन जाति है नियति
अपमान जिंदगी / उस धर्म को तुम क्या कहोगे ?
जिसमें समर्थन हो कोटि मनुष्यों की नीचता का
आदेश हो उन्हे , दास-कर्म करने का / निषेध हो पढ़ने और धन कमाने का
साफ़ कपड़े पहिनने , सभ्यता से रहने का/उन धर्मशास्त्रों को तुम क्या कहोगे ? " [44]

भारत उसकी संस्कृति एवं धर्म के लिए विश्वभर में जाना जाता है । भारतीय समाज की संस्कृति की पूरे विश्व में तूती बोलती है । और इसका श्रेय स्वामी विवेकानंद को जाता है । लेकिन उसी महान धर्म का यह कटू सत्य आज भी अपनी बर्बरतापूर्ण मौजूदगी दर्ज कराता रहा है । विवेकानंद जैसे महामानव भी शायद धर्म की इस गंदगी को साफ़ करने में असमर्थ रहे हैं । इसीलिए कवि भारतीजी ने स्वामी विवेकानंद कविता में कहा है कि -

" स्वामी विवेकानंद / काश ! तुमने ज्ञान , भक्ति और वेदान्त पर
थोथे नहीं लिखे होते / उसमें आग लगाई होती / तुमने अलख जगाई होती

वर्ण व्यवस्था के खिलाफ़ / सवर्ण सामन्तवाद के खिलाफ़

काश ! तुम अमेरिका नहीं जाते / धूमते भारत के ही उन गाँवों में

जहाँ रहते थे मनुष्यता से वंचित / दीन-हीन-दास अछूत

तुम उन्हें / स्वतंत्रता , समानता और सम्मान / का अर्थ समझाते

उनमें मनुष्यता का गौरव भरते । ” 45

दलित साहित्य की धार्मिक चेतना हिन्दू या किसी और धर्म का विरोध नहीं करती , लेकिन धार्मिक अंधश्रद्धा , कुटिल चाल और सृष्टि के विरुध्ध अवैज्ञानिक धार्मिक तत्वों को लताड़ती है । वह किसी भी धर्म या समाज के अन्यायी कानूनों से विद्रोह कर सही मानवीय धर्म की प्रस्थापना चाहती है । डॉ॰ कँवल भारती ने इस तथ्य को बखूबी सामने रखा है -

“ मैं हिन्दू धर्म का विरोधी नहीं हूँ / मैं विरोधी हूँ / असमानता का

अलगाव का / नफरत का / अस्पृश्यता का

जो भी धर्म शास्त्र , देवता , महापुरुष / सिखाते हैं असमानता

अलगाव , नफ़रत , और अस्पृश्यता / न्यायोचित ठहराते हैं जो वर्ण व्यवस्था

को मैं उन सबका विरोधी हूँ । ” 46

भारतीजी की कविता में दलित कविता की आर्थिक चेतना भी देखने योग्य है ।दलित जीवन की अमानवीय यातनाओं की एक वजह इस वर्ग की दरिद्रता भी है । हाँलाकि धर्म ने ही दलितों के अर्थोपार्जन पर प्रतिबंध लगा दिया है , अत: यही दलित वर्ग की मजबूरी भी बनी हुई है । कवि कहते हैं कि-

“ गोरख पांडे ने लिखी थी कविता / एक चिड़िया थी / चिड़िया भूखी थी /

इसीलिए गुनहगार थी /मारी गई वह चिड़िया / जो भूखी थी / लेकिन गोरख

पांडे ने गलत लिखा था /वह चिड़िया भूख से नहीं चिड़िया होने से पीड़ित थी

कवि इस अनुभव से गुजरा नहीं था / उसकी श्रेणी जन्म से पूज्य थी

वह कैसे जानता / गरीबी नहीं / सामाजिक बेइज्जती अखरती है

वह कैसे जानता/वह चिड़िया थी इसलिए गुनहगार थी/चिड़िया जो मारी गई।” 47

समाज में वर्चस्ववादियों को वे आगाह करना चाहते हैं कि अब तक आप लोंगों ने हम पर जो थोपा, वह हमने ढ़ोया लेकिन अब हम तुम्हारी कोई अतार्किक गुलामी नहीं करेंगे या तुम्हारा कोई भी शैतानी फ़तवा नहीं मानेंगे

" अब यह नहीं हो सकता / कि तुम राजा बने रहो / पीढ़ी-दर-पीढ़ी
हम बने रहें तुम्हारी प्रजा / पीढ़ी-दर-पीढ़ी / अब यह नहीं हो सकता
कि तुम मालिक बने रहो / पीढ़ी-दर-पीढ़ी / हम बने रहें तुम्हारे गुलाम
पीढ़ी-दर-पीढ़ी । " 48

कवि ब्राह्मणवादी खोखली मानवता का पर्दाफार्श करते हैं । उनका दृढ़ मानना है कि जब तक ये वर्ण व्यवस्था जीवित है , तब तक इस देश में मानव को केन्द्र में लाना मुश्किल है । आनेवाले भविष्य में भी यही व्यवस्था चलती रही रही तो आनेवाला समाज , आनेवाली पीढ़ी , आनेवाला भारत भी वही होगा जो आज है । आनेवाले कल के बारे में कवि मानते हैं कि -

" बस बारह तीलियों का एक चक्र / और पूरा होगा / और हम भारत के लोग
करोड़ों निरक्षरों-नगें-भूखों / और सामन्ती अवशेषों को साथ लेकर
इक्कसवीं सदी में चले जायेंगे / हम कितने महान हैं / कि हमने मरने नहीं दी
अपनी सामन्ती संस्कृति / इस उत्तर-आधुनिक वैश्विकरण की व्यवस्था में भी । " 49

कवि का ऐसा भविष्य दर्शन शोषितों को डराने या हतोत्साहित करने हेतु कतई नहीं है , बल्कि उनमें संघर्ष की तीव्रता को बढ़ाने और शिक्षित और संगठित होने की प्रेरणा हेतु ही है । इसी भावबोध के क्रम में कवि भारतीजी कहते हैं कि-

" पिछली सदी का इतिहास बोध / नई सदी में / मार्गदर्शन कैसे करेगा
अगर ये आदमखोर बाघ भी / होंगे नई सदी में ?
तो संकल्प लें हमें नई सदी के सूरज का स्वागत / एक कायर भीड़ के रूप में नहीं ,
प्रतिरोध की शक्ति जुटाकर / आदमखोर बाघों पर टूट पड़ने का
हौंसला लेकर करेंगे । " 50

इस प्रकार डॉ॰ कंवल भारतीजी की कविताओं में दलितों के दालित्य की स्पष्ट चिंता नज़र आती है ।

4.1.7 मलखान सिंह

" मैं नहीं जानता कि मैं कविता क्यों लिखता हूँ ? हाँ , इतना अवश्य जानता हूँ कि जाति-पाँति , ऊँच-नीच , छूत-छात , पाखंड , शोषण और अत्याचार का शिकार जब मैं स्वयं होता हूँ या किसी सहोदर को होते देखता हूँ , तो मेरे अन्दर कुछ उबलने लगता है , कुछ घुमड़ने लगता है , जिसे मैं शब्दों में पकड़ने की कोशिश करता हूँ । लेकिन पूर्ण को कभी कभी पकड़ नहीं पाता । पूर्ण को एक साथ न पकड़ पाने की यह छटपटाहट ही अंश के रूप में मेरी कविताओं को जन्म देती चलती है ।" [51] यह शब्द है अपने प्रखर दलित चिंतन से दलित कविता को सशक्त बनानेवाले दलित कवि श्री मलखान सिंह के । कवि के यही शब्द उनकी रचना धर्मिता को स्पष्ट करने में सक्षम हैं। मलखान सिंह एक क्रांतिकारी एवं विद्रोही कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं ।

30 फरवरी , 1948 को ग्राम बसई काजी , जनपद अलीगढ़ (उ॰प्र॰) में जन्मे मलखान सिंह ने एम॰ए॰(राजनीति शास्त्र) तक की शिक्षा प्राप्त की । 'लहर', 'उन्नयन', 'परिवेश' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं 'अमर उजाला' दैनिक में उनकी कविताएँ प्रकाशित एवं चर्चित होती रही हैं । इनकी १५ कविताओं का संग्रह ' सुनो ब्राह्मण ' सन् 1996 में प्रकाशित हुआ जिसने अपनी संवेदनाओं और बेधक अभिव्यक्ति के कारण दलित साहित्य में अनोखा स्थान प्राप्त किया ।

दलित जीवन की निर्मम यातनाओं और पल-पल भोगे हुए यथार्थ ने इनके अतीत को एक भयावह संस्मरण बना दिया है और इसी कारण दलित कविता के क्रांतिकारी स्वर में भाषा की आक्रामकता और आक्रोश का बेबाक चित्रण हुआ है । मलखान सिंह की कविता ' आखरी जंग ' इसका सटीक उदाहरण बन पडी है –

" ओ परमेश्वर / कितनी पशुता से रौंदा है हमें / तेरे इतिहास ने ।
हमारी बस्ती में / खांसती-बोझा ढ़ोती / लाशों को देख
जिन्दा रहने का साहस ही / खो बैठेगा तू ।/ हम फिर भी जिन्दा हैं !
और तुम ! चुप हो / गूंगे की तरह चुप / गोया तू मुंसिक नहीं
शैतान का ही वंशज है । " [52]

'मनुस्मृति' ने हिन्दू समाज को विभक्त करने का जो जघन्य कृत्य किया है , उससे मनु दलितों के शत्रु के रूप में सामने आये हैं । इसीलिए दलित कवियों ने मनु को जहाँ कहीं भी मौका मिला लताड़ा है । मलखान सिंह लिखते हैं कि -

" मैं आदमी नहीं हूँ स्साब / जानवर हूँ / दो पाया जानवर
जिसे बात-बात पर / मनुपुत्र-माँचो....बहन चो....
कमीन कौम कहता है । " [53]

मलखान सिंह दलित जीवन के यथार्थ को बिना किसी हिचकिचाहट पेश कर देते हैं । वे बिना किसी लाग-लपेट सीधा-सीधा लिख देते हैं । समाज की विद्रूपताओं को चित्रित करने में उनकी अनुभवजन्य टीस पाठक को झकजोर कर रख देती है-

" इस तथ्य को बचपन मैं ही / जान लिया था मैंने कि -
पढ़ने-लिखने से कुजात / सुजात नहीं हो जाता / कि पेट और पूँछ में
एक गहरा सम्बन्ध है / कि पेट के लिए रोटी ज़रूरी है
और रोटी के लिए पूँछ हिलाना / उतना ही ज़रूरी है । " [54]

दलित साहित्य की सांस्कृतिक चेतना प्राचीन मिथकों से ही प्राण पाती है । परंपरागत मिथकों के रहस्यों को उदघाटित करके उन्हे नया अर्थ देती है और फलतः वे ही मिथक दलितों के लिए शक्ति के प्रतीक बन जाते हैं । ' एकलव्य ' , ' शम्बूक ' आदि ऐसे ही मिथकों का उदाहरण है । इसीका सहारा लेकर वशिष्ठ और द्रोण दोनों को फ़टकारते हुए कवि मलखान सिंह लिखते हैं कि -

" यदि नहीं / तो सुनो वशिष्ठ ! / द्रोणाचार्य तुम भी सुनो !
हम तुमसे घृणा करते हैं / तुम्हारे अतीत / तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं

मत भूलो कि अब / महेनतकश बच्चे / तुम्हारा बोझ ढ़ोने को / तैयार नहीं है

बिलकुल तैयार नहीं है / देखो ! / बन्द किले से बाहर / झाँक कर तो देखो

बरफ पिघल रही है । / बछड़े मार रहें है फुर्री / बैल धूप चबा रहे हैं

और एकलव्य / पुराने जंग लगे तीरों को / आग में तपा रहा है । " [55]

कविने दलितोध्धार के लिए किये गए राजनैतिक प्रयासों एवं योजनाओं को 'कागज़ का घोड़ा' बताया है । अपनी कविता में राजनैतिक चेतना को व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्रित करते हुए उन्होंने लिखा है कि -

" हमारे वजूद को / धरती पर लाने हेतु / योजनाएँ बनती हैं

योजना के पेट में / योजनाएँ पकती हैं / विशाल सभागृह में

जंगली रिवाज पर / खूब बहस होती है / मेजें थपकती हैं

मेजे उचकती हैं / बौराये शब्द बीच / टोपियाँ उछलती हैं

आप ही बताएँ अब / कैसा यह अनूठा तंत्र / ढोंग तंत्र / जाति तंत्र

या कहें जौंक तंत्र ? " [56]

दलित की महेनत से मोटे पड़नेवाले सवर्णों और सामन्तों को दलित शक्ति का परिचय देकर उससे आगाह करते हुए मलखान सिंह कहते हैं कि –

" दूसरों की महेनत पर / कब्जा जमानेवाले साँप / तुम्हारे पैर नहीं होते ।

तुम्हारी हवेली की ढहती हुई बुनियादें / यही सब तो कह रही हैं खुलके ।

मदान्ध हो तुम / तभी तो नहीं समझते / कि गर्जन.../ चाहे बन्दूक की हो

या बादल की / धरती की गति को / नहीं बदल पाती । " [57]

दलित जीवन की विद्रूपताओं की चरम सीमा तो यह है कि वह चाहकर भी आह ! नहीं कर पाता । भविष्य का डर उसे चूप रहने पर मजबूर करता है । जो उसने झेला है , जो भोगा है उससे वह आनेवाली पीढ़ी को बचाना चाहता है । और यही मजबूरी उसकी जुबान और ज़मीर पर जंजीर बनकर पड़ी है -

" मेरी खुद की थूथड पर / अनगिनत चोटों के निशान हैं
जिन्हे अपने बेटे के चहरे पर / नहीं देखना चाहता
बस इसलिए उसकी गुर्राहट पर / मुझे गुस्सा आता है
साथ ही साथ डर भी लगता है / मरते समय बाप ने
डबडबाई आँखों से कहा था कि बेटे / इज्ज़त , इन्साफ़ और बुनियादी हक्क
सब के सब आदमी के आभूषण हैं / हम गुलामों के नहीं
मेरी बात मानो / अपने वंश के हित में / आदमी बनने का खाव्ब छोड़ दो
और चुप रहो । / तब से लेकर आज तक / मैं चुप हूँ । " 58

4.1.8 डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

ललित निबंधकार और कवि डॉ० पुरुषोत्तम 'सत्यप्रेमी' का जन्म 30 अप्रेल, सन् 1944 को उज्जैन (म०प्र०) के नारायणपुर में हुआ था । अपनी साहित्य यात्रा के दौरान उन्होंने 'एकत्र' , 'आश्वस्त' , 'बैरवाचेतना' , 'सीपिका' , 'नवज्योत' , 'प्रवाह', 'अंकुर' , 'संकल्प' , 'प्रवाल' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया । उनकी प्रकाशित कृतियों में 'द्वार पर दस्तक' , 'सवालों के सूरज' , 'मूक माटी की मुखरता' (काव्यसंग्रह) , 'पत्ते क्यों गिरते हैं' , 'दलित साहित्य और सामाजिक न्याय' (निबंध संग्रह) उनकी संपादित कृतियों में 'दलित साहित्य : रचना और विचार' , 'डॉ० सुमन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' , 'हिन्दी गज़ल : चन्द्रसेन विराट' , 'जनकवि : मानसिंह राही' आदि प्रमुख हैं । उनके इस साहित्यिक योगदान के फल स्वरूप वे उत्तर प्रदेश तथा भारतीय दलित साहित्य अकादमी के द्वारा सम्मानित हुए । सन् 1988 में उन्हे भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा ' डॉ० अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार ' प्रदान किया गया ।

डॉ० सत्यप्रेमी की रचनाओं में कथ्य बिम्ब के सहारे विकसित होता है और पाठक के दिलो दिमाग पर एक अमिट छाप छोड़ देता है । वर्ण व्यवस्था भारतीय दर्शन एवं सभ्यता के माथे का कलंक है , माथे का काला धब्बा है , जो युगों-युगों से

भारतीय समाज को विभक्त करके समाज के एक हिस्से को पशुवत जीवन जीने को मजबूर किये हुए है । धर्म शास्त्रों के ये काले अक्षर किसी भी प्रायश्चित से दूर नहीं होनेवाले । डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी कि कविता ‘ शस्त्रों और शास्त्रों का बोझ ’ इसी भाव का निर्वहन करती है -

“ सदमे / जब दिल पर होते हैं / तो वे वक्त के साथ गुजर भी जाते हैं
इन्हे भुलाया भी जा सकता है / पर संस्कृति-सभ्यता के विश्वास के बदन पर
चालाकी मक्कारी और स्वार्थ के काले हस्ताक्षर / मिटाये नहीं जा सकते । ” [59]

सभ्यता पर लगे इस काले हस्ताक्षर को मिटाने के लिए कठिन संघर्ष एवं क्रांति की आवश्यकता है । सिर्फ दलितोद्धार की खोखली बातें करते रहने से ये दाग-धब्बे दूर नहीं होने वाले - “ पूर्वजों के इतिहास को / उड़ते पृष्ठों में न बाँटे / चींटी सी रेंगती
क्रान्ति का परिवेश स्वीकारें / बातों के बल पर / बस्ती खड़ी नहीं होती
परिवर्तन की उपलब्धियाँ / राह में पड़ी नहीं होतीं / आज आदमी को
आदमी का भुवनेश स्वीकारें । ” [60]

डॉ॰ सत्यप्रेमी की कविताओं का एक विशेष उल्लेखनीय पहलू है उनका प्रौढ़ कवित्व । मानवता और मानवधर्म की संस्थापना उनके रचनाकर्म का मूलमंत्र है । उनकी कविता का स्वर पूर्णतः मानवतावादी है । दलित आंदोलन में सत्यप्रेमी ऐसे कार्यकर्त्ता है जो जनशांति मार्ग के हिमायती है -

“ विध्वंसक कार्य हिंसा दूर हो / छल-कपट-दंभ-मोह सब चुर हो
मानवता की प्रतिष्ठा के लिए / विजय-चरण करे चरण हरदम मेरे
जाग-जाग अब अन्तर मन मेरे । ” [61]

देश स्वतंत्र हो गया है किन्तु दलितों को सामाजिक बंधनों से मुक्ति मिलती नज़र नहीं आती । इस बात से कवि ह्रदय व्यथित है । दलितों की व्यथा अब राजनेताओं के लिए एक मुद्दा मात्र बनकर रह गयी है और इसी मानसिकता के विरोध में दलित कवि सत्यप्रेमीजी लिखते हैं कि –

" आँसू ही आँसू हैं / मेरे भारत / नम हुई है आँसू से / हर आदमी की आँख
और स्वतंत्रता , स्वराज्य व समता का / सपना संजोती भारतमाता
संशय की पीड़ा भोग रही है । " 62

कवि सत्यप्रेमीजी ने दलित साहित्य की सांस्कृतिक चेतना को भी खूब अभिव्यक्ति दी है । हिन्दू संस्कृति या ब्राह्मणी संस्कृति में सामाजिक अन्याय , अपमान,शोषण एवं उत्पीड़न को भी स्थान मिला है , और यही बात दलितों को नर्कागार में जीवन व्यतित करने पर मजबूर करती है । इस हिन्दू संस्कृति के बारे में कवि ने कहा है कि -

" हिन्दुओं की संस्कृति और साहित्य में / सम्वेदना का अभाव
साहचर्य का अभाव / विचार का अभाव । " 63

कवि का दृढ मानना है कि इन अभावों को सामाजिक समानता, बन्धुत्व , भाईचारा जैसे जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना करके ही भरा जा सकता है -

" असमानता-अन्याय की कहानी / जाति-वर्ग के अगुआ आदमी की
छाती चीर कर ही / खत्म की जा सकती है । " 64

ब्राह्मणों ने कुटिल चाल के तहत दलितों को अशिक्षित रखा है और इसी अज्ञान की वजह से वह आज भी धर्म शास्त्रों एवं संहिताओं का बोझ उठाए चलता है । सवर्ण समाज का यह अपराध अक्षम्य है । चाहे सवर्ण समाज कैसा भी प्रायश्चित्त करे लेकिन ऐसे जधन्य अपराध की माफ़ी संभव नहीं है क्योकिं-

" मान-अस्मिता-दर्पण / तिरस्कृत होकर मेरे पांवो में
किरच-किरच हो बिखरा है / पर मेरे क्षोभ-क्रोध
इस सदियों के संताप के अन्याय के विरुध्ध
सीने में सुलगते ज्वालामुखी सा सुलग रहा है । " 65

अपने मानवतावादी कविता-धर्म एवं विशिष्ट बिम्ब प्रयोग के लिए हंमेशा याद रहनेवाले कवि पुरुषोत्तम सत्यप्रेमीजी निश्चित ही एक संभावनाशील कवि रहे

हैं । भले ही आज वे हमारे बीच नहीं है लेकिन उनका रचनाकर्म दलित चिंतकों का हंमेशा मार्गदर्शन करता रहेगा ।

दलित साहित्य का फलक विस्तृत है और दलित साहित्य का एक सुनहरा पहलू यह भी है कि पुरुष साहित्यकारों के साथ साथ अब दलित स्त्रियाँ भी आगे आकर अपने व्यापक अनुभवों को अभिव्यक्ति देने लगी हैं । उनका अनुभव क्षेत्र व्यापक एवं एकदम अलग है । दलित स्त्रियों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी प्रारंभ कर दी है । यहाँ दलित कवयित्री डॉ॰ सुशीला टाकभौंरे के रचनाकर्म पर दृष्टिपात किया जा रहा है ।

4.1.9 डॉ॰ सुशीला टांकभौंरे

दलित साहित्य के महिला रचनाकारों में महत्वपूर्ण स्थानरखनेवाली डॉ॰ सुशीला टाकभौंरे का जन्म 4 मार्च सन् 1954 में जिला होशंगाबाद (म॰प्र॰) के ग्राम बानापुरा में हुआ था । 11वीं कक्षा से आगे पढ़ाने से जब परिवारवालों ने इनकार कर दिया तो उन्होंने भूख हड़ताल की जिससे उनको कोलेज में प्रवेश दिलाया गया । नागपुर निवासी श्री सुन्दरलाल टाकभौंरे जैसे उच्चशिक्षित , सुसंस्कृत एवं समाजसेवी पति की सहायता एवं प्रोत्साहन से पीएच॰डी॰ तक की शिक्षा प्राप्त की । इस प्रकार उनका जीवन शिक्षा के लिए संघर्षपूर्ण बना रहा और उनकी यही जिजीविषा ने उनको आगे चलकर साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित किया ।

डॉ॰ सुशीला टाकभौंरे की प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं -‘स्वाति बून्द और खारे मोती’ , ‘यह तुम भी जानो’, ‘इसको तुमने कब पहचाना’ , ‘अनुभूति के घेरे’ (चारों काव्य संग्रह) , ‘परिवर्तन ज़रूरी है’ (लेख),‘ हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी’,‘भारतीय नारी : समाज और साहित्य’ (विवेचन),‘टूटता बहम’(कहानी संग्रह) आदि ।

भारतीय समाज में हुआ परिवर्तन दलितों की दशा को सुधारने में नाकामियाब रहा है । दलितों के लिए तो आज भी समाज वही दुःखदाता और

कष्टदाता ही बना हुआ है, अतः सामाजिक परिवर्तन की डींगे हांकनेवालों को लताड़ते हुए कवयित्री ने कहा है कि समाज आज भी वही पुरानी सड़ी-गली धार्मिक परंपराओं से जकड़ा हुआ है । यही बात उन्होंने धृतराष्ट्र के मुँह से बखूबी कहलवायी है- "संजय / यह कौन-सा समाज है / बरसों से ठहरा है /

दया और ग्लानि की जमीन पर / बरसों से / उसके पैरों में वही है
और सिर पर भी वही है / त्याज्य और अपवित्रता का बोझ
कोई परिवर्तन नहीं / समय के बदलाव को यह जानता है
कई सन्देश और आदेश भी सुने हैं इसने / फिर भी / अपने ढर्रे पर ठहरा है
क्या यह भी मेरी तरह / दृष्टिहीन है ? " [66]

डॉ॰ सुशीला टाकभौरे कवयित्री होने के साथ-साथ एक दलित स्त्री भी है । इसीलिए उन्होंने एक दलित स्त्री होने का संत्रास एवं अहसास खूब भोगा है । शायद यही वजह है कि उनकी कविताएँ नारीवादी स्वर से ओतप्रोत है । नारी जीवन की हर एक बेबसी , उसका दर्द , अभाव एवं अस्मिता की तड़पन का जीवंत चित्रण डॉ॰ टाकभौरे की कविताओं की उल्लेखनीय विशेषता रही है । दलित कविता की विद्रोह की प्रवृति इनके नारीवाद स्वर में परिलक्षित होती है ।

" माँ-बाप ने पैदा किया था । गूंगा / परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही परिपाटी पर / बैसाखियाँ चरमराती हैं / अधिक बोझ से
अकुलाकर / विस्फाटित मन हुंकारता है / बैसाखियों को तोड़ दूँ । " [67]

स्त्रियों को समाज के अनेक बंधन-प्रतिबंधन को झेलना पड़ता है । वह क्या बोले , कब बोले , कैसा बोले सब समाज तय करता है । आज जब मैं यह लिख रहा हूँ तब दिल्ली सामूहिक बलात्कार का मामला पूरे देश में गर्माया हुआ है । पूरा देश दोषियों को कड़ी से कड़ी सजा देने के लिए सड़कों पर उतर आया है और तब भी समाज के कुछ कूपमंडूक-सी मानसिकता वाले कुछ नेता स्त्रियों को क्या पहनना चाहिए , कब पहनना चाहिए और रात को कितने बजे तक घर आ जाना चाहिए

उसकी नसीहतें दे रहे हैं। आज के 'शिक्षित' एवं 'विकसित' समाज के इस माहौल को डॉ॰ सुशीला टाकभौंरे बखूबी बताती है -

" लिखते समय कलम को झूका ले / बोलते समय बात को संभाले
और समझने के लिए / सब के दृष्टिकोण से देखे
क्योकिं वह एक स्त्री है। " 68

नारी सम्मान एवं अस्मिता की खोज इनकी कविताओं का प्राण है।

" वफ़ा के नाम पर / अपने बाप को / एक कुत्ता / कहा जा सकता है
मगर कुतिया नहीं / कुतिया शब्द सुनकर ही लगता है / यह एक गाली है
क्या इसलिए / कि वह / स्त्री वर्ग में आती है ? " 69

डॉ॰ सुशीला टाकभौंरे की इस 'गाली' नामक कविता में परुष-प्रधान समाज दुर्गुणों का दोष केवल नारी पर थोपकर किस प्रकार उसके सम्मान को लात मारता है उसका व्यंग्यपूर्ण वर्णन किया गया है -

" जब एक कुत्ता और कुतिया / एक दूसरे के पूरक हैं / तब / कुत्ते को वफादार
कहने के साथ ही / चरित्र के नाम पर 'कुतिया' गाली क्यों हो जाती है।" 70

दलित साहित्य की नारी चेतना अलग है। नारी आत्मसम्मान एवं अस्मिता की खोज के लिए कभी गिड़गिड़ाने नहीं आती। वह विद्रोह करती है , आक्रोश के साथ अपने आत्मसम्मान को वह शेरनी बनकर लेना चाहती है।

" नहीं चाहिए / दान की गाय और / दया की बकरी / ये बहिष्कृत जन
घेर लाये हैं / संचेतना की सिंहनी / यह आश्वासन का घास नहीं खाती
किसी का स्वामित्व नहीं मानती / फिर भी / यह हिंसक नहीं
अपने अस्तित्व की संरक्षक / सहयोगिनी है। " 71

स्त्री अपने अस्तित्व की आकांक्षी है , सम्मान की इच्छूक है। उसे इन सब सामाजिक बंधनों से मुक्ति चाहिए। उसे अपने वजूद की तलाश है। उसे प्रतिबंधो में मिलती

टूकड़ा-टूकड़ा राहत नहीं , पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए । उसे ‘ छत का खुला आसमान नहीं किन्तु आसमान की खुली छत ’ चाहिए । -

“ आज रोम रोम से / ध्वनि गूंजती है- और / पोर-पोर से पाँव फूटतें हैं
प्रचलित परिपाटी से हटकर / मैं भागती हूँ - सब और - एक साथ
विद्रोहिणी बन चीखती हूँ / गूंजती है आवाज सब दिशाओं में
मुझे अनन्त असीम दिगंत चाहिए / छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए / मुझे अनन्त आसमान चाहिए । ” 72

डॉ॰ सुशीला टाकभौरे ने स्त्री को एक अलग पहचान दिलाने की जानदार कोशिश की है । उनका मानना है कि स्त्री आत्मनिर्भर है , किसी पर निर्भर नहीं । उसे खुद अपनी नयी पहचान बनानी होगी इसी भाव बोध को केंद्र में रखकर बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से वे लिखती हैं कि -

“ लडकी तुम किसी पर निर्भर नहीं / स्वयं पूर्ण हो तुम मुझसे अलग नहीं
पर तुम्हारा अलग अस्तित्व है / तुम्हारी राह , तुम्हारी मंजिल
मुझसे बहुत आगे है / बहुत से रास्ते पार करने हैं / भीड़ का सामना करना है
भीड़ से अपनी अलग पहचान बनानी है / तुम्हे जूझना है आकाश को चूमना है
इसलिए अपने से अलग / रख दिया है मैंने तुम्हे / ताक पर । ” 73

आज समाज में स्त्री सुरक्षा एवं स्त्री सम्मान के झंडे लेकर निकलना एक फ़ेशन बन गया है । लेकिन यही लोग स्त्रियों को बहुत ही मामूली चीज, खिलौना मात्र मानते आये हैं । सच पूछो तो स्त्री की सच्ची पहचान उनके पास है ही नहीं , वे तो अपने स्वामिपन के मद में मस्त रहकर स्त्री उद्धार की केवल बातें करते हैं । समाज के ऐसे लोगों को कवयित्री कहती हैं -

“ पारखी ! / क्या कहते हो / वह कुछ भी नहीं / सिर्फ वही
जो तुम्हारा निर्णय है / कच्चे काँच के ढेर-सी / टूटती बिखरती अबला
बस !! / साथी का दम भरनेवाले / स्वामी / तुमने उसे कब पहचाना ?

क्यों कहते हो नारी को / मानव-समाज का गहना ! " 74

डॉ॰ सुशीला टाकभौरे ने दलित चेतना से भरपूर रचनाकर्म भी किया है । हिन्दू धर्म के महाकाव्य रामायण के शम्बूक , शबरी आदि मिथक दलित चेतना को धार प्रदान करते हैं , उस कहे जानेवाले रामराज्य का काला पक्ष उजागर करते हैं । कवयित्री ने वाल्मीकि को धन्यवाद दिया है कि उसने उस काल का नग्न सत्य बताया है- " ओ वाल्या ! / तुम कभी बूत नहीं बन सकते / तुममें चेतना है

समय बोध की / तुमने महात्मा राम के अपराध को / छिपाया नहीं

दिशा दी है शम्बूक-वंशियों को / अन्यथा / अनभिज्ञ रह जाते वे

उस काल की / विद्रूपता के सत्य से । " 75

वाल्मीकि का आहवान करके वे कहतीं है कि आज भी समाज में दलित पग-पग पर प्रताड़ित हो रहे हैं । और तुम ही तो दलित चेतना के वाहक हो, इसलिए आज तुम जन-जन के हित में नये रचना विधान की और अग्रसर हो-

" आज युग की माँग है / पुनः करो/वाल्मीकि का आहवान/ कितने क्रौंच मृत हैं

घायल हैं पीड़ित हैं / अपमानित हैं / हे महाकवि आदि कवि /जन-जन के हित

में / रचो / नये रचना विधान ! " 76

दलित जीवन की त्रासदायिनी परंपराएँ और धार्मिक कर्मकाण्ड बरसों से समाज के कंधे पर बैताल की तरह चिपके हुए है । यह परंपराएँ जब तक टूटेगी नहीं तब तक मानवीय धर्म की प्रस्थापना मुश्किल है । समाज को आत्ममंथन करने की प्रेरणा देते हुए कवयित्री कहती है कि -

" कब मिलेगा पशुतुल्य मानव को / अधिकार ! / कब बदलेंगे कर्मकाण्ड

कब मिलेगा सामाजिक न्याय / पूछो उससे / अन्यथा

कर दो उसके टुकड़े - टुकड़े । " 77

लेकिन अंधा और बहरा समाज ऐसे आत्ममंथन के लिए कतई तैयार नहीं होगा । क्योकिं उसे डर है कि यदि ये लोग ऊपर उठ गये , इनका विकास हो गया तो

उनका स्वामित्व एवं झूठा अभिजात्य खतरे में पड़ सकता है । इसीलिए उनकी भलाई इसी में है कि दलितों को किसी भी प्रकार से दलित ही रखा जाए । धार्मिक , सामाजिक ,आर्थिक , नैतिक , शैक्षिक सभी प्रकार के हथकंडे अपनाकर उनका शोषण ही किया जाए । कवयित्री ने धृतराष्ट्र के मुंह से यह बात बखूबी निकलवायी है-

" फिर क्या संभव है / ये अपनी जगह ठहरे मिलेंगे ?/ नहीं संजय , नहीं-
फिर तो ये / प्रगति के मार्ग पर / सबसे आगे रहेंगे / महा-भारत में
अपना विशेष / अस्तित्व रखेंगे । " [78]

दलित दमन को प्रतिपुष्टि देनेवाली धार्मिक परंपराएँ एवं आधार ग्रंथो के सामने दलित बागी बनकर खड़ा हो जाना चाहता है । विद्रोह का रणसिंगा लेकर वह बौध्धिक संग्राम के लिए भी तैयार हो रहा है इसीलिए अब वह चिंतन के स्तर पर संग्राम के लिए भी तैयार ही नहीं उत्सुक भी है । और जब ऐसा होगा तब पूरा विश्व उसका साथ देगा । इसी विश्वास को जताते हुए डॉ॰ सुशीला टाकभौरे ने कहा है कि- " अगर बन जाऊँ मैं / सनातन परंपरा को तोड़ने हेतु

तुम्हारे लिए अभिशाप / गहरे कुएँ तक पंहुचा दूँ / तुम्हारे चिन्तन के -
आधार ग्रन्थ / टूटेगा मौन व्रत / भविष्य की अंधेरी गुफ़ा में / तब
पावन श्रोता / मेरे प्रश्न के उत्तर / तुम अवश्य दोगे / केवल इतना ही नहीं-
उन्हे बार-बार दोहराते रहोगे । " [79]

डॉ॰ सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य की एक संभावनाशील कवयित्री हैं । उनकी कविताओं ने नारी चेतना एवं दलित चेतना को और बेधक बनाया है । नारी जीवन की प्रत्येक आह ! उनकी कविताओं में मिलती है । यह निश्चित है कि आनेवाले समय में वे अपने रचनाकर्म से दलित साहित्य को और समृद्ध करेंगी ।

4.1.10 डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर

दलित कवि सोहनपाल सुमनाक्षर का जन्म 6 अक्तूबर 1940 को दिल्ली के एक गाँव में साधारण परिवार में हुआ था । उन्होंने बी॰ए॰, एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰, डी॰लिट् तथा एल॰एल॰बी॰ तक की शिक्षा प्राप्त की है । रजतरानी 'मीनू' ने उनका परिचय कुछ इस

प्रकार दिया है-"वे बाबू जगजीवन राम द्वारा स्थापित 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। वे दिल्ली प्रदेश कोंग्रेस के महामंत्री भी रह चूके हैं। इस प्रकार डॉ॰ सुमनाक्षर का रुझान साहित्यकारों को एकत्रित करने में अधिक दिखाई पड़ता है।वे 'हिमायती' पाक्षिक के संपादक हैं और 'विश्व विद्यापीठ',शिशु शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, राष्ट्रीय प्रकाशन समिति, दिल्ली समाचार समिति, अमीर खुसरो साहित्य अकादमी, संत साहित्य अकादमी आदि के संस्थापक एवं अध्यक्ष हैं।" [80]

इस प्रकार देखा जाए तो डॉ॰ सुमनाक्षर एक बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी एवं साहित्य क्षेत्र के एक सक्रिय व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं 'अँधा समाज : बहरे लोग ' तथा 'सिन्धु घाटी बोल उठी'।

डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित जीवन की त्रासदियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है, यथा -

" मेरे परदादा मर गए जूठन खाते, उतरे चिथड़े पहनते, खेत बोते-जोतते इसे पूर्व-जन्मों का फल मानते-मानते और जमींदार फूलता गया / फैलता गया जमींदार का वंश / बढ़ता गया / आकाश बेल की तरह इनका खून चूसते-चूसते" [81]

जन्माधारित वर्ण-व्यवस्था ने धर्मांध भारतीय समाज को जाति-पाँति के ऐसे चश्मे पहना दिये थे कि वह इन्सान को केवल और केवल उसकी जाति-पाँति से ही पहचानता था। इन्सान की पहचान केवल उसके जन्म का कुल ही था। दलित चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो वर्ण व्यवस्था में जातिगत उच्चता ही श्रेष्ठ बनी रही। इसी समाजिक परिवेश का बयान डॉ॰ सुमनाक्षर ने किया है –

> " इन्सानियत की नहीं कोई कीमत / और न कोई पदवी है सद्‌चरित्र की
> जात-पांत के सांचे में ढलकर / यहाँ परख होती है मानव की / यहाँ
> आदर - निरादर भी बंटता है / जात-पांत की तराजू से।" [82]

सामाजिक यथार्थ की निर्भीक बयानी डॉ॰ सुमनाक्षर की कविताओं की विशेषता मानी जा सकती है । पूर्व जन्म एवं उत्तर जन्म की अपेक्षा उन्होंने वर्तमान के यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण माना है । उनकी कविताओं में पाठकों को दलितों की दरिद्रता के निकट ले जाने का सफ़ल प्रयास मिलता है -

"तुम पुराने कपड़े पहनकर / टूटे-फूटे छप्पर में / रहकर / सच्चे मन से जुटे हो
करने देश का निर्माण / पर फिर भी / वे सभ्य जन पुकारते हैं तुम्हें /
' गन्दे ईन्सान' ।" 83

भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा एवं सर्वहारा वर्ग सदियों से वर्ण-व्यवस्था की आड़ में अस्पृश्यता के दोज़ख को भोगता रहा है और सवर्ण समाज इसे धर्मादेश मानकर अधिकारपूर्वक इनका शोषण करता रहा है । इन्सान को इन्सान से अलग कर देने वाली इस सामाजिक कुव्यवस्था ने छूआछूत के विषधर को पाला-पोषा है । दलित कवि डॉ॰ सुमनाक्षर ने इस छूआछूत के आधारों का तर्क बद्ध विरोध किया है, यथा - " हमसे ही छूआछूत क्यों है ? / तुम कहते हो / कि हम मांस खाते हैं

इसलिए अस्पृश्य और नीच कहलाते हैं पर / आज तो तुम्हारे भाई सभी होटलों में मांस पकाते हैं / गाय-भैंस-सूअर-बकरी और मुर्गे का / जिसे तुम्हारे ही अधिकांश लोग बड़े चाव से खाते हैं / क्या हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने / उन्हें धर्म से अलग किया है ? / क्या रोटी-बेटी का रिश्ता / अगर नहीं तो /
फिर तुम्हारी / हमसे छुआछूत क्यों है ? " 84

दलितों के रहन-सहन एवं आहार-व्यवहार को आधार बनाकर उनसे छुआछूत का व्यवहार किया जाता था, इनका स्पर्श वर्जित माना जाता था, इनको छूने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है ऐसी मनगढ़ंत भ्रमणाएँ फैलायी जाती थीं, तब समाज के इन्हीं कुव्यवस्थापकों को डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर ने प्रश्न तलब किये हैं कि -

"तुम्हारा धर्म / तब भ्रष्ट नहीं होता / जब जवान अछूत कन्या रूपों
के साथ बलात्कार किया तुमने / तुम्हारा धर्म तब कहाँ था
जब रूपों की माँ ने दाई बनकर जन्मा था तुम्हें

* * *

तुम्हारा धर्म अभी तक भ्रष्ट क्यों नहीं हुआ / पीते-पीते पानी उस कुएँ का
जिसे अपने हाथों से / खोदते - खोदते रूपों का बापू वहीँ दबकर मर
गया था ।" 85

डॉ॰ सुमनाक्षर इस प्रकार के अतार्किक अत्याचारों का खुले-आम विरोध करते हैं । अपने साथ हुए अन्याय एवं अत्याचार के प्रतिशोध हेतु ऐसे आततायियों से दो-दो हाथ करने की मनसा लिए अपने समाज के महिला वर्ग में संघर्ष की चिनगारी को हवा देते हुए वे कहते हैं कि -

"मैं चाहता हूँ कि / मेरी माँ-बहनें / उसका अनुसरण कर / फूलन बनें
जिससे कि / उनकी इज्जत को / फूल समझकर / खेलनेवालों को
वे स्वयं डसें /इसका / क्या परिणाम होगा / यह भविष्य बताएगा / जब
हर मेरी माँ-बहन का नाम /इतिहास में / स्वर्ण अक्षरों में
लिखा जाएगा ।" 86

दलित वर्ग को अत्याचारों एवं शोषण की गर्ता से बाहर निकालने का रास्ता डॉ॰ बाबासाहब आम्बेडकर ने बताया था । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि तुम्हारा उद्धार करने के लिए कोई देवता अवतार नहीं लेनेवाला है । तुम्हें अपना उत्थान खुद ही करना होगा और उसके लिए डॉ॰ आम्बेडकर ने शिक्षा, संघर्ष एवं संगठन को ही एक मात्र उपाय बताया था । दलित साहित्यकारों ने भी अपने समाज को शिक्षित करने की बात पूरे ज़ोर से कही है । डॉ॰ सुमनाक्षर का कहना है कि -

"शिक्षा के प्रचार पर / ज़ोर दो / हर दलित बच्चे को
तुम शिक्षा की ओर मोड़ दो /पेट पट्टी बांधकर भी
अगर मेरी पीढ़ी पढ़ जाएगी / तो उसमें अन्यायियों से
जूझने की शक्ति स्वयं आ जाएगी ।" 87

डॉ॰ सोहनपाल ने अपनी कविताओं में दलित जीवन के दालित्य को सामने रखकर समाज को दर्पण दिखाया है । साथ ही साथ दलितों को भी संघर्ष एवं संगठन

का रास्ता बताकर इस नर्कागार से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया है। माताप्रसाद ने डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर के रचनाकर्म का मुल्यांकन करते हुए लिखा है कि -
"डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर, अध्यक्ष, भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं ,जिनमें जाति-भेद, वर्ण-भेद, धार्मिक अंध विश्वास से उत्पन्न समस्याओं को समाज के सामने रखकर व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित करते हैं। उनकी कविताएँ, यथा उपेक्षित लोग, गीता-कायरता का प्रतीक क्यों है ? धोखेबाजों अपमान न करो, ये मन्दिर, भाग्य रेखाएँ, आरक्षण, समर्पण, संगठन-शक्ति, अमृत-वाणी, निश्चयन्तता, तुम्हारा स्वार्थ, सीमाओं को तोड़ो, दलित समाज के युवकों से, ओ मेरे भिक्षुओं, फूलन हमारा आदर्श है, मेरे लोगों ने आदि लिखकर दलित-समाज को नयी दिशा दी है ।" [88] अतः हम कह सकते हैं कि डॉ॰ सुमनाक्षर की कविताएँ दलित समाज के लिए दिशादीप के समान हैं।

4.1.11 डॉ॰ सुखवीर सिंह

दलित कवि सुखवीर सिंह का जन्म 5 अगस्त,1943 को ग्राम ग्यासपुर, जनपद मेरठ में हुआ तथा देहावसान 31,जनवरी 1994 को हुआ। अपने जीवनकाल में वे निरन्तर रचनारत रहे। इनकी कृतियों में बयान बाहर, अनन्तर और सूर्यांश उनके काव्य संग्रह है। हालांकि उनके काव्यसंग्रह 'सूर्यांश' का प्रकाशन होने से पूर्व ही उनका जीवनदीप बूझ गया। उनके समीक्षात्मक ग्रंथों में 'रामचरित मानस' की पाश्चात्य समीक्षा, हिन्दी कविता की समकालीन चेतना, समीक्षा के बदलने प्रतिमान, हिन्दी कविता की समकालीन अन्तर्धाराएँ आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त भी उनकी कृतियाँ 'सिसकिया', 'पागल'(उपन्यास) आदि प्राप्य है। उनके इतने बृहद रचनाकर्म से यह स्पष्ट होता है कि उनके जीवन का प्रत्येक पल साहित्य सर्जन को समर्पित रहा था।

डॉ॰ सुखवीर सिंह की कविताओं में भारतीय समाज के उस बृहद हिस्से का साक्षात्कार है जो आज भी शोषित है, उसके शोषण का रूप बदल गया है लेकिन वह

अस्पृश्यता का मरज आज भी लाइलाज ही दिखाई देता है । आज भी ग्रामीण खेतिहर मजदूरों की दशा पशुवत बनी हुई है । ग्रामीण मजदूरों की आर्थिक अवदशा का चित्रण करते हुए लिखते हैं -

" ओ मेरे गाँव ! / तू गवाह है कि तेरी गोद में पलते हुए
वक्त से पहले ही, उनके हाथों से खिलौने छूट जाते हैं । /
कुछ बच्चों के स्वप्न पूरे होने से पहले ही टूट जाते हैं ।
खुल जाती हैं आँखें एक भयावह काँटेदार जंगल में / जहाँ दिखाई पड़ता है
खेतों में खडी फसलों की जड़ों में / मिटता हुआ खेतिहर मजदूरों का वजूद
पिघलता हुआ पसीना-दर-पसीना ।" [89]

गाँवों में दलितों के साथ आज भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है, जैसा प्राचीन समय में किया जाता था । छुआछूत वहाँ आज भी पनप रही है और ग्रामीण दलित समाज आज ऐसे 'पौराणिक' व्यवहार को सहने के लिए बाध्य है । वह आज भी समाज की मुख्यधारा से अलिप्त है, अलग-थलग है -

"ओ मेरे गाँव ! / तेरी ज़मीन पर / घुटी-घुटी साँसों के साथ
पलना पड़ता है अलग-थलग / लड़खड़ाते कदमों से
चलना पड़ता है अलग-थलग / यह सब बहुत गहरे उतर गया था जेहन में
बचपन के टूटते सपनों के साथ-साथ ।" [90]

भारतीय समाज में जातिगत श्रेष्ठता आज भी कायम है । उच्चजाति को शिक्षा, कारोबार आदि स्वायत्तताएँ स्वतः प्राप्त हैं , जबकि निम्न जाति के युवकों को इसी के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है । जातिगत श्रेष्ठता की इस अमानवीय एवं अतार्किक परंपरा पर करारी चोट करते हुए डॉ॰ सुखवीर सिंह कहते हैं कि -

"खुद चाहे कीचड़ / काँटों में / खड़े रहे एक पाँव / पर अलग हटकर
जाति की श्रेष्ठता में अकड़े हुए / नीच से नीच व्यक्ति के लिए भी
राह बनानी है ।" [91]

इसी क्रम में डॉ॰ सुखवीर सिंह आगे लिखते हैं -

"वे सभी मालिक हैं परंपरा से / खेत के दुकान के मकान के /
डेरी बिजली कारखानों के / स्कूल स्टेशन अस्पतालों के /
रथ के बहेली के गाड़ी के / जो बिना कुछ करे-धरे / सब कुछ हड़प लें / लाठी
और शास्त्र के नाम पर /उनका सिर्फ जुल्म जागता है / और दिमाग /
हमेशा के लिए पड़ा हुआ सोता है / उन्हें तो शायद यह भी पता नहीं रहता /
कि दुनिया का हर आदमी एक ही जगह से पैदा होता है।" 92

भारतीय धर्मांध समाज की व्यवस्था ही ऐसी है कि जहाँ उच्च वर्ण के लोग हमेशा ऊपर ही रहते हैं और निम्न जाति के लोग हमेशा पैरों तले कुचले जाते रहे हैं । यदि ऐसे परिवेश में कोई दलित आगे बढ़ने की चाह लिए उत्थान के प्रयत्नरत बनता है तो वह उसके लिए अग्निपथ ही सिद्ध होता है । उत्थान के अभिलाषी दलित की लहूलूहान होने की प्रक्रिया को रेखांकित करते हुए डॉ॰ सुखवीर सिंह लिखते हैं -

"उस दिन मैंने / दूसरों से आगे बढ़ने के लिए /
रास्ते छोड़ देने की बन गई लीक से /अलग हटकर अपना पाँव जमा खुद आगे
बढ़ना चाहा / तभी मैंने आग को चिमटे की नोंक पर नहीं अपनी हथेली पर
सुलगते पाया।" 93

डॉ॰ सुखवीर सिंह का साहित्य दलित-दलन के सम-सामयिक दस्तावेज हमारे सामने रखता है । दलितों का यही दलन उनमें आक्रोश, विद्रोह एवं संघर्ष-चेतना की चिनगारी को हवा देता है और सच तो यही है कि दलितों के दलन ने ही संघर्ष-चेतना को जीवंत रखा है । यही बात करते हुए डॉ॰ सुखवीर सिंह कहते हैं -

"फिर भी मैं तेरा अहसानमंद हूँ मेरे गाँव

* * *

तो सिर्फ इसलिए / कि तेरे से मैंने सीखा / बगावत का पहला सबक
इतने वर्ष बीत जाने पर भी / जो याद है / एक एक अक्षर पूरा का पूरा

और जो अभी भी मुझे / रात-दिन सताता है - उकसाता है

सोने नहीं देता मुर्दों के बीच / मुझे मुर्दा होने नहीं देता ।" [94]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि दलित कविता के क्षेत्र में डॉ॰ सुखवीर सिंह की कविताएँ अपना अलग वजूद प्रस्थापित करती हुई नज़र आती है । उन्होंने अपने रचना कर्म से दलित साहित्य को नया आयाम दिया है ।

4.1.12 मंशाराम विद्रोही :

19 जून, सन 1945 को उत्तर प्रदेश के ग्राम तुलसीपुर, खीरी जनपद में जन्में दलित कवि मंशाराम विद्रोही ने दलित जीवन की त्रासदियों का ह्रदय स्पर्शी वर्णन अपनी कविताओं में किया है । एम॰ए॰ तक की शिक्षा प्राप्त करनेवाले मंशाराम विद्रोही की प्रमुख कृतियों में 'दलित पचासा' (काव्य संग्रह), 'दलित मंजरी (संकलित कवि) तथा 'दलित दस्तावेज' (शोध) शामिल हैं । इसके अतिरिक्त 'करिया बडेरी', 'नसीब', 'एकलव्य', 'झाँसी की रानी', 'राम कहानी', 'डॉ॰ नेल्सन मंडेला' जैसी महत्वपूर्ण फूटकर रचनाएँ उनके कवित्व को उजागर करती है । श्री विश्वम्भर दत्त ने उनके काव्यकर्म के विषय में लिखा है कि - "मंशाराम विद्रोही द्वारा रचित कविताएँ सत्य घटनाओं पर आधारित है, जो बाकायदा संदर्भित हैं । उन्होंने रोंगटे खड़े कर देनेवाली घटनाओं का वर्णन किया है । विद्रोहीजी की कविताएँ सिर्फ कविता के अहसास से हटकर महज पाठकों को झकझोरने और ऐसी सड़ी गली व्यवस्था के परखचे उड़ाने के उद्देश्य से ही रची गयी है ।" [95]

दलित जीवन में विडंबनाओं एवं त्रासदियों का अंबार होता है । अतः दलित अपने जीवन के प्रत्येक पल में इनसे झूझता, टकराता एवं लड़खड़ाता रहता है । दलितों के नरसंहार को देख-देखकर दलित कविता रो पड़ती है । दलित कवि की सामाजिक संवेदनशीलता का चरम दलित कविता में अभिव्यक्ति पाता है । कवि विद्रोहीजी ने दलित संहार के दस्तावेज पेश किये है । ' क्या दलित तुम्हारी गठरी में ? ' कविता में उन्होंने दलित दमन की घटनाओं का बेखौफ़ जिक्र किया है -

"आन्ध्रा के उस दंगे की, जहाँ रामनापलों की लाशें
बादोलिपुरा की घटना है, जल गई जहाँ कृष कासें /
उन चार अछूतों की हत्या, कानोड़िपुरा है गठरी में
ग्यारह को जीवित भून दिया, बेलछी का क्रन्दन गठरी में ।" 96

दलितों को समाज की मुख्यधारा से हमेशा दूर रखा गया है । उन पर अनेकानेक प्रकार की निर्योग्यताएँ लाद दी गयी हैं । अतः उनका जीवन विपन्नता के चंगूल में फँस जाता है । अर्थाभाव दलित जीवन की सार्वजनिक एवं स्वाभाविक त्रासदी है, जिसकी वजह से दलित चाहकर भी अपने जीवन का आनंद नहीं ले पाता है और अपने सपनों के टूटने के मंजर का मूक प्रेक्षक बना रहता है । निर्धनता के कारण होली- दिपावली जैसे त्यौहार भी दलितों के लिए एक समस्या का रूप ले लेते हैं -

"फागुन के महीने में मटरा मसूर उठ / कच्चा-पक्का जौ कट, थोड़ा सा अनाज आ / अन्न ही को बेचकर, कपड़े ख़रीदे कुछ / आर्य के कबीले में, सोच का उबाल आ /आदिवासी मूल नर, नारियाँ नवेली बन / आर्य जन देखा होगा, मन में विकार आ ।" 97

उपरोक्त पंक्तियों में जहाँ एक ओर दलित जीवन की विपन्नता की प्रस्तुति है, वहाँ दूसरी ओर दलितों के द्वारा नयी चीजें खरीदने पर समाज की आपत्ति एवं दलित नारियों के प्रति कामाकर्षण का जिक्र भी मिलता है । यहाँ अर्थाभाव की समस्या पर सीधा प्रहार मिलता है । सवर्ण समाज ने धर्म शास्त्रों की आड़ में दलितों पर मन चाहे अत्याचार किये हैं । मनगढ़ंत वर्ण-व्यवस्था को ईश्वर कृत बताकर दलितों को अपने पैरों तले कुचला है । लेकिन सच्चाई यह नहीं है, यह सामाजिक व्यवस्था तो सोची-समझी मानव-निर्मित कुव्यवस्था है । इसीलिए कवि विद्रोहीजी धर्म, शास्त्रों, वेदों के सनातन सत्य को ही नकारते हैं -

"अब तो चेत दलित मेरे भाई /
ईश्वर वेद सकल झूठे, झूठी जाति बनाई ।" 98

यह बात संपूर्ण सत्य है कि दलित कविता जिगर का काम है, हिम्मत का काम है, क्योंकि दलित कविता की लेखनी हमेशा अवरुद्ध होती आयी है। शाम-दाम-दंड-भेद से यथा संभव दलित काव्य कर्म में बाधाएँ पैदा की जाती रही हैं। दलित कवि की सामाजिक एवं साहित्यिक अवदशा को मंशाराम विद्रोही ने शब्द बद्ध किया है -

> "इस लीक कवि व्यथा, अन्याय अत्याचार जो / या लेखनी उस पर चला, अनुमान के उस पार जो / निर्माण करता काव्य का, मन की जलाकर झोंपड़ी कवि लीक से जब भी हटा, /उस पर व्यवस्था रो पड़ी ।। [99]

इस प्रकार मंशाराम विद्रोहीजी की कविताएँ अनुभवजन्य है एवं व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती है। अपनी कविताओं में उन्होंने दलितों की तड़पन को अभिव्यक्ति देकर समाज-व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाया है। अतः इस दृष्टिसे मंशाराम विद्रोही कवि ही सिद्ध होते हैं।

4.1.13 डॉ॰ धर्मवीर

दलित कवि डॉ॰ धर्मवीर का जन्म 9 दिसम्बर, 1950 में हुआ था। मेरठ (उ॰प्र॰) के निकट नगला तासो गाँव में जन्मे डॉ॰ धर्मवीर ने सामाजिक दर्शन विषय पर पी॰एच॰डी॰ एवं 'आरक्षण' विषय पर डी॰लिट् की उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने करीब ३० से अधिक कृतियों की रचना की है। वे 1980 में केरल कैडर के अंतर्गत आई॰ए॰एस॰ बने। श्री मोहनदास नैमिशराय ने उनके विषय में लिखा है कि - "1987-88 में उन्हें हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'लोकायत वैष्णव विष्णु प्रभाकर' पुरस्कार तथा 1988 में भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा 'डॉ॰ अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार' प्राप्त हुए। वे हिन्दी, मलयालम, अंग्रेजी, उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं के ज्ञाता हैं। भारत के अधिकांश स्थानों का भ्रमण कर चुके हैं।" [100] उनके विस्तृत रचनाकर्म में कम्पिला और हिरामन जैसे काव्य संग्रह, किनारे भी मझधार भी, बंजारा, पहला ख़त (उपन्यास) तथा हिन्दी की आत्मा, संत रैदास का निवर्ण संप्रदाय, कबीर के आलोचक आदि विवेचनात्मक रचनाएँ तथा भीम की जिद्द

अम्बेडकर की शिक्षा, दक्खिन की खूंट, हाथी और गीदड़ की कहानी आदि जैसी बाल साहित्य की कृतियों का भी समावेश होता है ।

डॉ॰ धर्मवीर का विस्तृत रचनाकर्म ही बताता है कि वे एक प्रबुद्ध कवि हैं । सामाजिक क्षेत्र में वर्षों तक कार्यरत रहने के कारण उनका सामाजिक चिंतन एवं दृष्टिकोण भी विशेषता रखता है । भारतीय समाज में फैले वर्ण, जाति, सम्प्रदाय आदि दूषणों को उन्होंने करीब से देखा है और जांचा-परखा है । वे भारतीय समाज के बारे में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हैं कि -

"वर्ण निठल्लों के अधिकार चले आ रहे हैं / जातियाँ मूर्खों की संपत्ति घोषित हैं / अस्पृश्यता प्रमादियों का पहला बचाव है ।" [101]

डॉ॰ धर्मवीर का सामाजिक चिंतन स्पष्ट है । आज का दलित समाज कुछ हद तक ऊपर उठ पाया है लेकिन उसमें भी सवर्ण समाज की सोच का प्रदूषण फैला हुआ है । वह अपने विपन्न ज्ञातिबंधुओं से दूर होने लगा है और इसीलिए दलित समाज में भी अलग-अलग वर्ग का निर्माण हुआ है । दलित समाज का उच्च वर्ग आज दहेज़ के लेन-देन में मानने लगा है । जीवन भर डॉ॰ अम्बेडकर के विचारों की वकालत करनेवाला दलित आज भी ऐसी कुप्रथाओं को छोड़ना नहीं चाहता । ऐसे लोगों की कथनी और करनी में विषमता पायी जाती है ।

" ढोल-ढपले पीट, हाथ पैर-मुंह से / इक्यावन रुपये के भात पर नाच-कूंद ब्याह रचानेवाले झुग्गियों में / ग्यारह रुपये की पीढ़ी सरकाने पर 'बहुत-बहुत' कह उठनेवाले / मान्यता में, तर्क-त्रिपुंड की, भूखों नहीं है ।" [102]

अपने समाज को शिक्षा, संघर्ष एवं समता के लिए जाग्रत एवं प्रेरित करना ही दलित साहित्यकार का एकमेव उद्देश्य होता है । इसके लिए उसे जो भी करना पड़ता है वह करता है । उन पर हुए जुल्मों को बताकर उनके ज़ख्मों को कुरेदता है तथा अज्ञान, विवशता एवं अशिक्षा का चित्रण कर उससे दो-दो हाथ करने की प्रेरणा देता है । डॉ॰ धर्मवीर ने दलितों के दलन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

"शोषण की अमर बेला / दमन की महागाथा यातना के पिरामीड़ /
उत्पीड़न की गंगोत्री ऋणों के पहाड़ / ब्याज के सागर / निरक्षरों के मस्तिष्क
महाजनों की बही पर / रुक्कों पर अंगूठों की छाप /
ऊट पटांग जोड़-घटा, गुणा, भाग देना / सब एक ।" [103]

समाज की इस अमानवीय एवं अतार्किक कुव्यवस्था का जिक्र कर कवि अपने समाज को जागृत करना चाहता है । संघर्ष के लिए शिक्षा से बेहतर और कोई हथियार नहीं है । अतः प्रायः प्रत्येक दलित साहित्यकार दलितों को साक्षर बनने का आह्वान करता है । डॉ॰ धर्मवीर भी अपने समाज को शिक्षित बनने की हिदायत देते हैं -

"भूमि बंटे न बंटे / सम्पति मिले न मिले / बच्चों को पढ़ाते जाओ
भूखे मरकर भी ।" [104]

इस प्रकार प्रबुध्ध कवि डॉ॰ धर्मवीर ने अपनी कविताओं में भारतीय समाज में व्याप्त जातीयता एवं दरिद्रता को बेनकाब किया है ।

4.1.14 डॉ॰ श्यामसिंह 'शशि'

सूरसरि गंगा स्थल हरिद्वार के निकट जन्मे डॉ॰ शशि ने पी॰एच॰डी॰ तथा डी॰लिट्॰ तक की शिक्षा प्राप्त की है। दलित किसान परिवार की संतान डॉ॰ श्यामसिंह ने शशि के समान दलित साहित्य को प्रकाशित एवं पल्लवित किया है । उनकी रचनाओं की रोशनी से दलित साहित्य झगमगा उठा है । डॉ॰ शशि की रचनाओं की संख्या लगभग एक सौ पचास से भी अधिक है । उनकी काव्यकृतियों में 'अग्नि सागर', ढाई आखर, लहू के फूल तथा एकलव्य और अन्य कविताएँ प्रमुख हैं । दिल्ली बंगलौर, मेरठ गढ़वाल, राजस्थान, केरल आदि विश्वविद्यालयों में डॉ॰ शशि की रचनाओं पर शोधकार्य भी हो चुका है ।

डॉ॰ श्याम सिंह 'शशि' ने अपनी कविताओं में मिथकों का सटीक प्रयोग किया है । परंपरागत मिथकों को आधुनिक दृष्टिकोण से पेश किया है वे नए मिथकों का निर्माण भी करते हैं । उनकी 'एकलव्य' एवं 'शम्बूक' जैसी रचनाएँ सवर्ण समाज को

दर्पण दिखाती है । डॉ॰ शशि की मिथक योजना उनकी रचनाओं को प्रबलता प्रदान करती है । झलकारी बाई कविता में वे लिखते हैं कि -

" लोग लक्ष्मीबाई को तो / याद करते हैं / कवि उन पर कविताएँ लिखते हैं
लेकिन जिसने उसे / झाँसी की रानी बनाया /
उस वीर नारी झलकारी बाई / को भूल जाते हैं ।" 105

डॉ॰ शशि के मिथक भारतीय इतिहास के अज्ञात या अल्पज्ञात चरित्रों को सामने लाते हैं । स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दलित योद्धा बिरसा मुंडा के योगदान को याद करते हुए 'बिरसा भगवान' नामक कविता में डॉ॰ शशि लिखते हैं कि -

"डोमरी पहाड़ियाँ काँप उठीं / हुंकार तुम्हारी सुन बिरसा /
इंचा घाटी में गूंज रही / प्रतिध्वनी तुम्हारी थी बिरसा ।

* * *

धरती को अब भी सींच रहा / मुंडा बिरसाइत लहू यहाँ
अंग्रेजों से लड़ने आये / बिरसा महान भगवान जहाँ । 106

डॉ॰ शशि ने अपनी मिथक योजना से यह सिद्ध कर दिया है कि दलित प्राचीन पौराणिक काल से ही सताये जा रहे हैं, उनका सिर्फ और सिर्फ उपयोग ही किया जाता रहा है । महाभारत के पात्र घटोत्कच का जिक्र करते हुए वे अपनी लम्बी कविता 'आदिपुत्र' में लिखते हैं -

"पर हिडिम्बा पुत्र / भोले भाले आदिवासी / फँस गये शब्दों के जाल में
बुला लिया गया मरने को / महाभारत में ।" 107

रामायण काल में शम्बूक वध की कथा दलित दमन का खुला दस्तावेज है । केवल शूद्र होने की वजह से ही मर्यादा पुरुषोत्तम ने अपनी सारी मर्यादाएँ तोड़कर उसका वध किया था । डॉ॰ शशि ने 'शम्बूक' कविता में यही कटु सत्य पेश कर दिया है -

" ऋषियों के रक्षक / यह तुमने क्या किया - ऋषि को / तीर से मार दिया ।
पूर्व ग्रहों से सधा / निशाना अचूक था / तपस्वी शायद /
शूद्र 'शम्बूक' था ।" 108

प्राचीनकाल से लेकर आज तक समाज के एक बड़े वर्ग को समाज से, संसार से अलिप्त रखा गया है । दलितों का दलन एवं उनका केवल उपयोग करने की वृत्ति आज भी पायी जाती है । आज के समय में भी दलित का मूल्य केवल एक वोट ही बना रहा है । विविध प्रलोभन देकर उन्हें खरीद लेने की चेष्टा की जा रही है और उनके अर्थाभाव को ही हथियार बनाया जाता है । डॉ॰ शशि 'शबरी के बेर' कविता में प्राचीन एवं आधुनिक तरीकों की तुलना करते हैं -

" शबरी / तुम्हारे बेर तो / आज भी खाये जाते हैं / हाँ अन्तर सिर्फ इतना है कभी उन्हें / पुरुषोत्तम की मर्यादा खाती थी / आज उन्हें वोट बैंक खाती है ।" [109]

यह निर्विवाद सत्य है कि दलितों पर मनचाहे अमानवीय अत्याचार की कुपरंपरा आज भी कायम है । समाज का बुद्धिजीवी वर्ग भी इस कुपरंपरा का मूक प्रेक्षक बना रहा है । दलितों की इस अवदशा को चित्रित करनेवाले दलित साहित्य को अवरुद्ध करने के यथासंभव प्रयास किये जाते हैं । यहाँ तक कि दलित साहित्य के अस्तित्व एवं उपयोगिता पर ही सवालिया निशान लगाने की प्रवृत्ति पूरे ज़ोर में है । दलित साहित्य की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को सिद्ध करते हुए डॉ॰ शशि लिखते हैं कि - "तुम्हारे पास नहीं है वे शब्द / जो अनुभूतियों में पले हों /

तुम्हारे पास नहीं हैं वे भाव /जो पीर पराई से उपजे हों /

हाँ, तुम देश-विदेश के पुरस्कार पा सकते हो / अपनी भूख मिटा सकते हो /

भूखी पीढ़ी का नाम लेकर / उन्हें कुछ दे नहीं सकते

उनकी भूख और बढ़ा सकते हो ।" [110]

इस प्रकार डॉ॰ श्याम सिंह शशि की कविताएँ दलित काव्य को मिथकीय आधार देती है और समाज को दर्पण दिखाकर परिवर्तन की कामना करती नज़र आती हैं ।

4.1.15 डॉ॰ एन॰ सिंह

डॉ॰ एन॰ सिंह दलित काव्यधारा के अग्रिम कवियों में से एक हैं । 1,जनवरी सन 1956 को उत्तर प्रदेश के सहारनपुर (जनपद) के चतरसाली गाँव में जन्मे डॉ॰

सिंह ने पी॰एच॰डी॰ तक की शिक्षा हाँसिल की है तथा अनेक संस्थाओं में अध्यापन कार्य भी किया है। अपने दीर्घ कालीन साहित्यिक जीवन में उन्होंने अनेक कृतियों की रचना की जिनमें सतह से उठते हुए (काव्य संग्रह) संपादित काव्य संग्रहों में 'सम्पुट', 'दर्द के दस्तावेज' एवं ' चेतना के स्वर ' तथा अन्य लेख, आलोचना, कहानी संग्रह आदि सामिल है। डॉ॰ एन॰ सिंह के काव्यकर्म के बारे में डॉ॰ हरिमोहन का कथन है कि - "इनकी कविताओं में सामाजिक सन्दर्भों को विभिन्न कोणों से उठाया गया है। सामाजिक संवेदना से लैस ये कविताएँ बहुत कुछ सोचने पर बाध्य करती है। कई कविताएँ शिल्प की ताज़गी और बुनावट की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सबसे बड़ी बात इनकी कविताओं में एक ताप है एक आग है, कुछ कर गुजरने की।" [111]

डॉ॰ सिंह को आक्रोश के कवि कहा जाता है। उनकी कविताओं में व्यवस्था पर कुठराघात मिलता है। वे अपनी रचनाओं के द्वारा समाज के व्यवस्थापकों को चुनौती देते हैं। जिन धर्म शास्त्रों की दुहाई देकर आज तक दलितों का दलन हुआ है उन्हें नष्ट कर देने की मंशा लिए कवि सिंह कह उठते हैं कि -

" अब ! मेरे हाथ की कुदाल / धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी / उस व्यवस्था की / जिसके संविधान में लिखा है -
तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है। श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नहीं।" [112]

भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के कारण दलित समाज विपन्नता का शिकार रहा है। वह सक्षम एवं समर्थ होते हुए भी धन एकत्र नहीं कर सकता ऐसा मनुस्मृति का विधान है और यदि वह ऐसा करता है तो उसका धन छीन लेने का भी धर्मादेश है। इस प्रकार दलित समाज पर दीनता थोपी गई है। इसका वर्णन करते हुए डॉ॰ एन॰ सिंह कहते हैं कि -

"अब मैं समझ गया हूँ / उस अंक गणित को। जिसके कारण / मेरे श्रम कण /
मिट्टी में मिलकर / तुम्हारी झोली को मोतियों से भर देते हैं और /
मेरी झोली में होती है / भूख, बेबसी और लाचारी।" [113]

आधुनिक समय में कानून एवं बदनामी के डर से दलितों का खुले आम शोषण करना मुश्किल हो गया है। लेकिन फिर भी सवर्ण समाज आज भी दलित-दमन के नये-नये तौर-तरीके निकाल लाया है। दलितों की मजबूरियों का प्रयोग करके उन्हें समता एवं समानता का मृगजल दिखाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के प्रयास होते हैं। निरीह एवं अबुध दलित वर्ग कभी-कभी ऐसे छल का भोग बन जाते हैं। इसलिए सवर्णों के ऐसे षडयंत्र से सतर्क रहने की बात डॉ॰ एन॰सिंह ने की है -

" सावधान / आ रहे हैं भेड़िये / गाय के वेष में / उनकी वाणी में जो अमृत है,
दरअसल वह / विष है / जो कान से दिल तक पहुँचकर / धीरे- धीरे असर करता है। /वह तुम्हारे अस्तित्व का / सौदा करने आ रहे हैं ,
बड़ी विनम्रता से /कुछ देने का वायदा करके / कुछ बहुमूल्य ले जाएँगे।" [114]

चूँकि सदियों से दलितों को धर्म के नाम पर, धर्मशास्त्रों की आड़ में रौंदा गया है, कुचला गया है, दलित का विश्वास धर्म से उठ गया है। वह ऐसे धर्म को नहीं स्वीकारता जो उन्हें मानव ही नहीं मानता और पशुओं से बदतर जीवन के लिए बाध्य करता है। डॉ॰ अम्बेडकर ने भी इसिलिए बौध्ध धर्म अंगीकार कर लिया था। दलितों के धर्मांतरण पर भारतीय समाज में भूचाल आ गया और इसे अयोग्य एवं घोर पाप सिद्ध करने के लिए जी-तोड़ कोशिशें की गयी थीं। धर्मांतरण के विषय में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ एन॰ सिंह ने लिखा है कि -

" आप कहते हैं / पेट की सलवटें / धर्म बेचने पर उतारू हैं
ये धर्म का प्रश्न नहीं / रोटी की कहानी है / जिन्दगी के गणित को
हवा में सुलझाने वालों / इस दौर को समझो
ये दौर तूफानी है / जिसकी आँखों के सामने लुटती है बेटी की इज्जत /
उसकी बेबसी को समझो / यूँ धर्म का उपदेश न दो / उसने सिर्फ रोटी के लिए ही / धर्म को बेचा है / उसे कुछ दो या न दो / किन्तु यह दोष न दो।" [115]

दलित कवि अपनी रचनाओं के द्वारा अपने पद्-दलित समाज को शिक्षित, संगठित एवं संघर्षशील बनाने की मानिंद अपनी कृतियों में जान डाल देता है। वह समाज में

हर प्रकार की स्वतंत्रता एवं समानता का आकांक्षी है । वह मानव समाज में मानवोचित स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा लिए हुए हैं । डॉ॰ एन॰ सिंह ने दलित रचनाकार की इस मनोदशा को इस प्रकार बताया है -

“ सतह से उठते हुए मैंने जाना कि / इस धरती पर किये जा रहे श्रम में
जितना हिस्सा मेरा है / उतना ही हिस्सा / इस धरती के / हवा-पानी और
इससे उत्पन्न होनेवाले अन्न और धन में भी है ।” [116]

अंत में हम कह सकते हैं कि डॉ॰ एन॰ सिंह के रचनाकर्म से दलित कविता की मारकता प्रबल हुई है ।

4.1.16 डॉ॰ कर्मशील भारती

दलित कवि एवं नाटककार डॉ॰ कर्मशील भारती का जन्म 1955 में दिल्ली के मुनीरका गाँव में हुआ था । स्नातक तक शिक्षा प्राप्त करनेवाले यह साहित्यकार विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़े रहे । उन्होंने दलित नाट्य मंच की स्थापना की एवं अपने निर्देशन में कई नाटकों का सफल मंचन भी किया । उनकी बहुचर्चित काव्य कृतियों में कर्ज, जागृति, दलित चेतना, बाबा ने कहा था, पीड़ा, मजूरन आदि का समावेश होता है । अपने जीवनकाल में भारतीजी सामाजिक सरोकारों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे । आधुनिक भारतीय समाज के बारे में डॉ॰ कर्मशील भारती का अपना दृष्टिकोण है । समाज में व्याप्त भेद भाव के साथ-साथ समाज की आर्थिक एवं नैतिक अवदशा का चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में किया है । समाज की आधुनिक अवदशा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि -

“ निर्धनता की चक्की में पिस रहा समाज है । महंगाई की रगड़न में पिस रहा
समाज है, मुट्ठी भर धनवानों में उलझी आर्थिक व्यवस्था
सदियों पहले सा शोषण विद्यमान आज है ।” [117]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने देश की आर्थिक अवदशा के कारण को स्पष्ट कर दिया है साथ ही साथ दलितों एवं सर्वहारा वर्ग के शोषण का जिक्र भी स्पष्ट रूप

से किया है । भारतीय समाज में नारी को अबला माना जाता है । अतः वह हर प्रकार के शोषण की भोग्या बनी रहती है । स्त्री - शोषण भारतीय समाज का कलंक है । 'यत्र नार्यस्त् पूज्यन्ते' की गुलबांगे हांकनेवाला भारतीय समाज नारी उत्पीड़न को रोकने में अकर्मण्य दिखाई देता है । इसीलिए तो यहाँ 'रमन्ते तत्र देवता' की अनुभूति नहीं हो पा रही है । डॉ॰ कर्मशील भारती ने यथास्थिति का चित्रण इस प्रकार किया है - " भारत आज भी / जंगली युग में जी रहा है / स्त्री और दलित

की अस्मिता पर / हमला हो रहा है । / कर्मशील मानव,

नित नये अपमान के / आँसू पी रहा है ।" [118]

भारतीय दलित नारी तो दलितों में भी दलित हैं । समाज के शोषण एवं अत्याचार की मूकभोग्या बनी रहना ही उसकी नियति है । लेकिन फिर भी उसका अपना आत्मगौरव खंडित नहीं होता है । वह अपने भविष्य को आराम देह बनाने के लिए समाज से किसी भी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं है वह कर्मरत है, कर्मशील है एवं नित अपने श्रमकण से धरती का सिंचन करती आयी है । समाज की अनैतिकता एवं उस श्रमिक महिला की नैतिकता की तुलना करते हुए डॉ॰ भारती जी ने 'मजूरन' कविता में लिखा है कि -

" अपनी मेहनत के प्रति / निराश भी नहीं है, भविष्य के लिए

भीख भी नहीं माँगती है / सड़कों पर भिखारियों की तरह ।

चोरी भी नहीं करती है / दफ़तर के 'अफसरों' की तरह ।

बेईमानी भी नहीं करती है / दुकान पर बैठे किसी 'लाला' की तरह

झूठ भी नहीं बोलती है / राजनीतिज्ञों / इतिहासकारों की तरह ।" [119]

यह कर्मरता दलिता अपने कार्य के प्रति पूरी निष्ठा से समर्पित है । उसे अपने आज, कल और परसों-नरसों की चिंता नहीं है, क्योंकि वह अपने श्रम के प्रति आश्वस्त है, विश्वस्त है । वह कर्म को ही अपना धर्म मानती है ।

डॉ॰ कर्मशील भारती अपने कविताकर्म के साहित्यिक दायित्व को भली-भांति जानते है । साहित्य में समाज परिवर्तन की क्षमता है वह पहचानते हैं । उनकी

आकांक्षा भी वही है कि उनकी कविताएँ समाज-परिवर्तन का कारण बने, समता-समानता के उद्भव का कारण बने । इसीलिए वे कहते हैं कि -

" मैं नही जानता कविता क्या कर सकती है ? / कविता कर सकती है विद्रोह

ला सकती है समाज में समानता / अन्याय, भेदभाव का अंत कर ।" [120]

इस प्रकार डॉ॰ कर्मशील भारतीजी की कविताओं में एक विशिष्ट प्रतिबद्धता के दर्शन होते हैं । साहित्यिक दायित्व बोध एवं सामाजिक दायित्व बोध उनकी रचनाओं का प्रमुख स्वर रहा है ।

4.1.17 अशोक भारती

दलित कविता साहित्य के समकालीन स्वरुप के निर्माण में जिन कवियों का प्रमुख योगदान रहा है,उनमें अशोक भारतीजी का भी समावेश होता है। अशोक भारतीजी की कविताएँ दलित समाज को आंदोलित करती हैं एवं समाज के सामने चुनौती के स्वरुप में पेश आती हैं ।

दलित महेनतकश वर्ग है । वह जो भी खाता है अपने खून-पसीने की खाता है । समाज के लिए सुख-सुविधाओं का निर्माण करता है । यह भारतीय समाज की विडंबना है कि जो वर्ग अन्यों के लिए सुविधाओं का निर्माण करता है, वह खुद अभावों की ज़िंदगी जीता है । दुनिया के लिए खुश्बू रचनेवाले गंदे, कटे-पिटे-फटे हाथ समाज की 'बदबू' को झेलता आया है ।

अशोक भारतीजी इस तथ्य को सामने लाते हैं –

" किसकी रचना थे वे / काले, मीट्टी के चमकीले बर्तन, / भूरे-लाल खिलौने और /पाँसे के पत्थर ? / किसका पसीना था वह / ढाके का मलमल,
चंदेरी की साड़ियाँ, / गाढ़े का खद्दर ? / कौन थे वे जो / पत्थरों में दम भरते थे,/ सूत से कमाल करते थे / तुम्हारा इतिहास गढ़ते थे ? / क्या वह तुम्हारे वंशज थे /जाति बिरादर थे / ब्राह्मण थे, पुरोहित थे राजा थे ?
वह शूद्र थे, अछूत थे ।" [121]

श्रमजीवी वर्ग ने उच्च वर्ग के लिए अपने स्वेद रत्नों को सींचकर विशाल अट्टालिकाओं का सर्जन किया, किंतु दुर्भाग्यवश उसी अट्टालिकाओं में उनकी अस्मिता को, उनकी पवित्रता को, उनकी आबरू को रौंदा गया, कुचला गया, लूटा गया। उनकी खुद की निर्मिती उनकी अस्मिता के चीर-हरण की मूक प्रेक्षक बनी रही। अतः दलितों के मन में विद्रोह एवं संघर्ष की प्रलयकारी ज्वाला का प्रज्वलन तो स्वाभाविक ही है। अपने इसी विद्रोही स्वर को अशोक भारतीजी स्पष्ट करते हैं -

" धरती को चीरकर सोना उगानेवाले / पत्थरों को तोड़कर सड़कें बनानेवाले,
काश ! तूने उन खोपड़ियों को तोड़ा होता
जो तेरी गुलामी का मकड़जाल बुनती हैं।" [122]

अम्बेडकर विचारधारा दलित साहित्य की नींव है। दलितों में मानवीय अस्मिताभाव की जागृति डॉ॰ अम्बेडकर के जीवन- कवन की फलश्रुति है। अपनी दयनीय दशा को नियति मानकर बेबसी का शिकार समाज सदियों से इन गुलामी की बेड़ियों को एवं शोषण के बोझ को ढ़ोता आया है। डॉ॰ अम्बेडकर इसके खिलाफ़ संघर्ष कर समता की स्थापना करना चाहते थे। डॉ॰ बाबा साहब आजीवन धर्माधारित एवं जन्माधारित सामाजिक कुव्यवस्था के खिलाफ़ रहे हैं। कवि अशोक भारती भी समाज को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि आज भी हमारे दिलो में डॉ॰ बाबा साहब अम्बेडकर जिंदा है, जो सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत थे -

" याद रहे, मैं ही रहूँगा / आज ही नहीं हमेशा
तुम्हारी व्यवस्था के खिलाफ़ / विद्रोह का परचम - क्रान्ति का हिरावल,
मैं हूँ अम्बेडकर - ब्राह्मणवाद का विनाशक।" [123]

दलितों के लिए अब उत्थान का एकमात्र रास्ता संघर्ष एवं विद्रोह का ही है। कहते हैं जो चीज माँगने से नहीं मिलती उसे संघर्ष कर छीन लेना पड़ता है। यदि कभी इसमें असफलता प्राप्त हो तो निराशा से घिरकर बैठ जाना कदापि उचित नहीं हैं। निरंतर संघर्षरत रहकर ही लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। कवि अशोक भारती अपने पद्-दलित समाज को यही संदेश देते हैं -

" क्योंकि, न निराशा नियति है / न उलझन / और न ही अनिश्चय जीवन
इसलिए न उदास होना, / न घबराना / न हिम्मत हारना
बस मजबूत कदमों से आगे बढ़ना / और बस आगे बढ़ते जाना ।" [124]

इस प्रकार अशोक भारतीजी का पद्य-परिश्रम सटिक, सफल एवं सार्थक प्रतीत होता है ।

4.1.18 डॉ० सी० बी० भारती

30 जून, सन 1957 में उत्तर प्रदेश के फ़ैजाबाद जनपद में जन्मे डॉ॰ सी॰ बी॰ भारती दलित साहित्याकाश के एक तेजस्वी तारक के समान हैं। उन्होंने एम॰ए॰ तथा पीएच॰डी॰ तक की शिक्षा प्राप्त की है तथा वे दलित साहित्य के क्षेत्र में रचनारत हैं । दलित कविता के क्षेत्र में भारती जी की विशेषता का वर्णन करते हुए डॉ॰ एन॰ सिंह ने लिखा है कि " डॉ॰ सी॰बी॰ भारती की कविताएँ बहुत ताकतवर है जो हमारे समय की सच्चाइयों से सीधे आँख मिलाकर विषमताओं पर अपनी पूरी शक्ति से वार करती हैं, अपने पूरे होशोहवास के साथ और कवि के प्रति आश्वस्त करती है ।" [125]

समकालीन दलित कविता के क्षेत्र में डॉ॰ भारती विशिष्ट स्थान रखते है । उनकी कविताओं में सच की बेख़ौफ़ अभिव्यक्ति मिलती है, ये समाज के तथाकथित व्यवस्थापकों एवं नियामकों को आरोपी ही नहीं बल्कि दोषी करार देते हैं । अपने काव्य संग्रह 'आक्रोश' में डॉ॰ सी॰बी॰ भारतीजी ने सवर्णों एवं अवर्णों के अंतर को स्पष्ट कर दिया है । वे सीधे संवाद की शैली में लिखते हैं कि -

तुम जब खेलते थे खिलौने से / मैं भटकता था ढोर-डगरों के पीछे तब
तुम जब जाते थे पढ़ने स्कूल / मैं अपने भाई बहनों को छाती पर लादे
अपनी झोंपड़ी में भूखा-प्यासा आंसू बहाता था तब
तुम्हारी माँ जब तुम्हें सुबह जगाकर /प्यार करती थी स्कूल भेजती थी
मेरी माँ उस समय तुम्हारे ही खेतों पर ठिठुरती
काँपती मशक्कत करती रहती थी / तुम अपनी माँ की लोरियाँ सुनकर ही सो
पाते थे उस समय मैं भूखे पेट रहकर / भी खाता था । केवल झिड़कियाँ ।" [126]

डॉ॰ भारतीजी ने अपनी रचनाओं जहाँ एक ओर प्राचीन मिथकों को नवीन एवं तार्किक संदर्भ में पेश किया है, वहीँ दूसरी ओर सामान्य प्रतीकों का प्रयोग कर अपनी वेदना को वाचा देने का प्रयास किया है । भारतीजी का प्रतीक-चयन भी विशिष्ट रूप में हमारे सामने आता है जैसे -

> " तितली बाज नहीं थी, दगाबाज भी नहीं थी वह / नहीं पहुंचायी चोट उसने कभी न दिया धोखा किसी को / उसने कभी नहीं मारा हक़ किसी का स्वप्निल पथ पर, / पंखों को फैलाए / उड़ती जाती थी वह /
> तो भी बच नहीं पायी वह -
> शोषकों के खूनी डैन से / तार-तार कर दिये पंख उसके बार-बार तोड़ दिये गये उसके अधदिखे सपने सलोने उपजाकर फरेबी फितूर बनावटी असमानताओं की " 127

सवर्ण समाज की अमानवीय बर्बरता एवं शोषण को बेनकाब करना ही उनकी रचनाओं का एकमात्र उद्देश्य प्रतीत होता है, जो उनकी 'जोंक' नामक कविता में दृष्टिगत होता है –

> " जोंक जानती है सिर्फ / औरों का खून चूसना / जोंक जानती है सिर्फ -
> औरों के खून से / अपने कद को बड़ा करना / बढ़े हुए अपने कद के जनून में -
> जोंक जानती है सिर्फ / अपने शिकार को दर्द देना / दिन- ब- दिन
> उसे कमज़ोर करते जाना " 128

भारतीजी की कविताओं में वेदना की एक मार्मिक टीस उभरती है जो सहृदय पाठकों को अखरती है, चुभती है । दलित समाज की ताड़ना ही सवर्ण समाज की प्राचीन एवं 'समृद्ध'परंपरा रही है । पीढ़ी दर पीढ़ी इस परंपरा का निर्वाह होता आया है । आश्चर्य की बात यह है अन्य बहुत से धर्मादेशों का पालन न करनेवाला सवर्ण समाज इस धार्मिक एवं सामाजिक कुरीति का मुस्तैदी से पालन करता आया है, यथा -

" तुमने सौंपी है घृणा / अपनी बच्चों को / मिली थी तुम्हें जो विरासत में
तुम्हारे बाप-दादाओं से / और उन्हें / उनके बाप-दादाओं से
घृणा की यही आग /
फैलती रही सदियों-सदियों से अपने देश के परिवेश में " 129

सवर्ण समाज के इस अमानवीय अत्याचार की परंपरा ने दलित समाज को नास्तिक बनने के लिए मजबूर कर दिया है । अपने ऊपर सदियों से होते आए अमानवीय अत्याचारों की पृष्ठभूमि में वह ईश्वर के करुणासागर एवं समदर्शी स्वरुप को मानने के लिए कतई तैयार नहीं है, क्योंकि उसे कभी भी ईश्वर के इन रूपों का अहसास नहीं हुआ । ईश्वरीय आदेश एवं धर्म पुस्तकों पर अंधविश्वास ने ही उनके जीवन को नर्क बना दिया है, वही बात भारती जी की यह पंक्तियाँ बताती हैं -

" देखता हूँ जब भी / किसी गरीब की पीठ पर
शोषण के बेरहम निशान लगता है जैसे / ईश्वर है ही नहीं
जब भी सुनता हूँ नुचती हुई नारी का चीत्कार / बनाई जाती देवदासियाँ
उठते है मेरे मस्तिष्क में प्रश्न / ईश्वर हो ही नहीं सकता ।" 130

कवि भारतीजी का दिल इस प्रकार के अमानवीय एवं अतार्किक अत्याचार को कतई सहन करने के लिए तैयार नहीं है, इसलिए उनकी कविता इन अत्याचारों एवं शोषण से विद्रोह कर उठती है और आक्रोश का स्वर तीव्र बन जाता है -

" मगर जोंक नहीं जानती - कि एक दिन उसका शिकार जरुर बिलबिलायेगा
दर्द जब सहा न जाएगा / और खून घट जाएगा, तब
जरुर वह गुस्साएगा । / और मसल दी जाएगी जोंक तब
जोंक नहीं जानती ।" 131

इस प्रकार भारतीजी की रचनाओं में सिर्फ दलित जीवन की आह-कराह ही नहीं है, बल्कि वह संघर्ष के लिए हौंसला भी दिलाती है । उनमें दालित्य से मुक्ति की छटपटाहट भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है ।

4.1.19 डॉ॰ असंग घोष

डॉ॰ असंग घोष भी दलित कविता के क्षेत्र में एक चर्चित नाम है । डॉ॰ असंग घोष ने 'सहारा अलगनी' हल्लाड़ी, धर्म ! तुम्हें तिलांजली देता हूँ, छप्पर फाड़ कर देना, मुझे ही..., आखिर क्यों ? जब चाँद गिर पड़ेगा, अँधा-बहरा भगवान आदि कविताओं के द्वारा दलित कविता को नयी ताकत प्रदान की है ।

डॉ॰ घोष की कविताओं में धर्म एवं ईश्वर के प्रति भारोभार आक्रोश की अभिव्यक्ति मिलती है । धर्म से ही वर्ण एवं वर्ण से जाति तथा पीड़ा दलित समाज को रौंदती आयी है । उत्पीड़न को भी धर्म संगत बताकर दलितों पर अमानवीय अत्याचार किये गए हैं । आश्चर्य की बात तो यह है कि करुणासागर, दीनदयालु एवं समदृष्टा कहलानेवाला ईश्वर भी इनकी सहायता के लिए नहीं आता । तब दलितों का धर्म एवं ईश्वर से विमुख होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है । धर्म से अवतरित वर्ण एवं जाति को नकारते हुए कवि असंग घोष लिखते हैं कि -

" धर्म / तुम भी एक हो / मेरे पैदा होने के बाद / जाति के साथ /
चिपकने वाले ! / कमबख्त जाति को / मैं नहीं त्याग सकता / यह सदियों पूर्व से /मेरे पुरखों के साथ / थोपी गई हैं

* * *

तुम्हारा बाप बामन

* * *

वह पीठ पीछे वार करना नहीं भूलता / तुम्हारा ठेकेदार जो है / फिर मैं
तुम्हें क्यों न छोड़ूँ / लो / मैं तुम्हे तिलांजली देता हूँ ।" 132

धर्मशास्त्रों का मनगढ़ंत अर्थघटन करके दलितों को दबाए जाने की प्रवृत्ति प्राचीन समय से चली आ रही है । मानव की जाति ही उसकी एकमेव पहचान बन जाती है । जाति के आधार पर ही मानव का सामाजिक दर्जा एवं हैसियत तय होती है । मानव के गुण एवं कर्म की अपेक्षा उसकी जाति ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । यह जाति एवं वर्ण व्यवस्था सवर्ण समाज की सुनियोजित एवं सुखाकांक्षी तथा सुविधाप्रद

सामाजिक व्यवस्था है जिसके तहत् उच्चवर्गों को निम्न जातियों के उत्पीड़न के अधिकार स्वतः प्राप्त हैं । कवि असंग घोष ऐसी जाति वयवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं - " जाति / खेतों में पैदा नहीं हुई / घर के अन्दर-बाहर रखे

गमलों में नहीं खिली कभी / किसी पेड़ के फल से भी / पल्लवित नहीं हुई
ना ही किसी कारखाने में निर्मित हुई / यह बनी है /
तुम्हारे ही बोये बबूल के काँटों की नोंक पर बामन ! [133]

भारतीय समाज की ऐसी कुव्यवस्था का कारण यह है कि समाज के जिस वर्ग को समाज में ज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्य सौंपा गया था उसी ब्राह्मण-वर्ग ने समाज में जाति-पाँति के अज्ञान का प्रचार किया । मनु स्मृति का सहारा मिलने पर इस वर्ग ने समाज के निम्न वर्ग को पीड़ित एवं प्रताड़ित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । अपने सुनियोजित षडयंत्रो को धर्माधारित बताकर दलितों को धर्म एवं ईश्वर के खिलाफ़ खड़ा कर दिया गया । सर्वहारा दलित वर्ग भगवान को ही अपना शत्रु मानने लगा है, क्योंकि करुणा सागर के मन में दलितों की ऐसी अवदशा के लिए लेशमात्र भी करुणा नहीं जगी । ईश्वर की इसी असहायता का वर्णन करते हुए कवि श्री असंग घोष ने कहा है कि -

" किसी भी रोशनी में / कभी भी दिखाई नहीं दिये
शिखाधारियों के षडयंत्रो को रोकते / दलितों पर होते दमन को थमाते
शस्त्रधारी पत्थरदिल भगवान ।" [134]

इस प्रकार कवि असंग घोष की कविताएँ दलित कविता की वेधकता को प्रखर बनाती हैं ।

4.1.20 दयानंद बटोही

बिहार में जन्मे डॉ॰ दयानंद बटोही ने पी॰एच॰डी॰ तक की शिक्षा प्राप्त की है । अपने स्कूली एवं समाजिक जीवन के दौरान उन्हें भारतीय समाज के जो कटु अनुभव हुए वही उनके रचनाकर्म के प्रेरणा स्त्रोत बन गए । उनकी रचनाओं में

यातना की आँखें, सुरंग (कहानी संग्रह), साहित्य और सामाजिक क्रान्ति (लेख संग्रह), कफ़न खोर (मगही कहानी संग्रह) आदि शामिल हैं । समाज ने पल-पल उनकी संवेदनाओं को आहत किया है और वही अकुलाहट उनकी रचनाओं में साफ़ झलकती है । 'नई लहर' एवं 'साहित्य यात्रा' जैसी पत्रिका के संपादक डॉ॰ बटोही ने दलित जीवन की यातनाओं को भोगा है, दलित दमन के शिकार बने हैं अतः उनकी रचनाएँ यथार्थबोध की दृष्टि से अपना अलग स्थान रखती है । दलित जीवन की पीड़ा एवं संतापों को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है -

" जूता गांठते । / हाथ काँपता है । / फिर भी गांठते हो ।
तुम्हारी झुर्रियाँ तनी-तनी खुरदरी / और बेबसी / पसीना में तैरता खून
तुम थक गए ? कब नकारोगे ? / अब हम सभी जूता गांठेंगे ।" [135]

डॉ॰ बटोही दलित दमन के भुक्तभोगी रहे हैं । अतः उनके दिल के घाव अभी भी गहरे हैं । आज के तथाकथित विकसित एवं शिक्षित भारतीय समाज में भी दलितों पर हो रहे अत्याचार कम नहीं हुए हैं यह एक दुखद सत्य है । दलित छात्रों के साथ विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है । पता नहीं क्यों आज का समाज भी दलित छात्र पढाई में आगे हो यह बात स्वीकार करने से कतराता है । और येन केन प्रकारेण उसे शिक्षा के क्षेत्र में भी पीछे रखने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगा देता है । दलित छात्रों के साथ हो रहे अन्याय को डॉ॰ दयानंद बटोही ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

" मैं सिर्फ / द्रोण तुम्हारे रास्तों पर चले गुरु से कहता हूँ,
अब दान में अंगूठा माँगने का साहस कोई नहीं करता / प्रैक्टीकल में फेल करता है / प्रथम अगर आता हूँ तो / छठा या सातवाँ स्थान देता है
जाति गंध टाइटल में खोजता है /
वह आत्मा और मन को बेमेल करता है ।" [136]

दलित साहित्य की मिथक योजना सटीक एवं अनोखी है । कई पौराणिक नायकों को यहाँ खलनायक के रूप में चित्रित किया गया है । जिनमें महाभारत काल के आचार्य

द्रोण प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है । उन्होंने अपने मेघावी छात्र एकलव्य से अंगूठा दान में माँगकर उसकी प्रतिभा को प्रारंभ में ही कुचल देने का घिनौना कृत्य किया था । आज भी कुछ 'द्रोण' इसी बात का पुनरावर्तन एवं प्रचलन कर रहे हैं । लेकिन ऐसे तथाकथित गुरुओं को अब सचेत हो जाना चाहिए क्योंकि आज के एकलव्य ना तो वैसे भोले भण्डारी है, ना ही वनवासी की भांति अबूध और बेबस हैं । वे आज ऐसे द्रोणों के षडयंत्र को पहचान चूके हैं । इसी बात की अभिव्यक्ति करते हुए डॉ॰ दयानंद बटोही ने लिखा है कि -

" सुनो ! द्रोण सुनो !

एकलव्य के दर्द में सनसनाते हुए घाव को / महसूसता हूँ एक बारगी दर्द हरियाया है / स्नेह नहीं गुरु ही याद आया है / जिसे मैंने ह्रदय में स्थान दिया हाय ! अलगनी पर टंगे हैं / मेरे तरकश बाण/ तुम्ही बताओं कितना किया मैनें तुम्हारा सम्मान / लेकिन एक / बात दुनिया को बताऊँगा तुम्हीं ने छलकर / दान में माँगा अँगूठा ।" [137]

डॉ॰ दयानंद बटोही की काव्यकृतियाँ दलित-वेदना को तरंगित करती है । वेदना का एहसास ही दलित साहित्य के सर्जन का मूल है । डॉ॰ बटोही ने दलित कविता की अभिव्यक्ति को मारक बनाया है ।

4.1.21 डॉ॰ रजनी तिलक

दलित कवयित्रियों में रजनी तिलक एक बहुचर्चित नाम है । वे 'कदम' नामक एक सामाजिक संस्था की अध्यक्षा है।अतः वे एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी विख्यात हैं ।उनकी काव्यकृतियों में वजूद है, 'नाचीज', 'औरत-औरत में अंतर है', 'शिक्षा का परचम', 'बुद्ध चाहिए युद्ध नहीं', 'जीवन बदलेगा अवश्य' आदि शामिल हैं ।

दलित नारियाँ दलितों में भी दलित मानी जाती हैं, क्योंकि दलित होने के साथ-साथ स्त्री होने की पीड़ा को भी वह झेलती है। भारतीय समाज में दलितों एवं महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। इस समाज ने महिलाओं पर भी अनेकानेक प्रकार की निर्योग्यताएँ थोप रखी हैं। नारी जीवन की वेदना एवं विडंबना को व्यक्त करते हुए रजनी तिलक लिखती हैं -

" औरत होने की वजह से / बहुत कुछ झेलना पड़ता है
रात को दिन,दिन को रात / सूरज को चाँद कहना पड़ता है
औरत जो खुद को इंसान समझे / तो दुनिया खिलाफ़ हो जाती है
समाज तूफान ले आता है / परिवार सहम जाता है।" [138]

भारतीय समाज में यदि महिलाओं का यह स्थान है तो समाज के सबसे निम्नवर्ग की नारियों की हालत क्या होगी इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। आधुनिक समाज में स्त्री-शिक्षा की बातें की जाती हैं लेकिन ऐसे प्रयास सिर्फ सवर्ण महिलाओं तक ही सीमित रह जाते हैं। दूर-दराज की ग्रामीण दलित महिलाओं के लिए तो शिक्षा एवं सम्मान आज भी आकाश-कुसुम ही बना हुआ है। आज इन महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने के संनिष्ठ प्रयासों की कमी नज़र आ रही है। कवयित्री रजनी तिलक ने इसी बात को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है -

" प्रसव पीड़ा झेलते फिर भी एक सी
जन्मती है एक नाले के किनारे / दूसरी अस्पताल में,
एक पायलट है / तो दूसरी शिक्षा से वंचित है,
एक सत्ताहीन है, / दूसरी निर्वस्त्र घुमायी जाती है।
औरत नहीं मात्र एक जजबात / हर समाज का हिस्सा
बंटी वह भी जातियों में / धर्म की अनुयायी है
औरत-औरत में भी अंतर है।" [139]

डॉ॰ बाबासाहब अम्बेडकर ने दलितों को शिक्षा प्राप्त करने का आह्वान किया था। शिक्षा से संघर्ष एवं समता की स्थापना संभव है। रजनी तिलक ने दलित महिलाओं

को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया है । चूँकि कवयित्री खुद एक शिक्षित महिला है, अतः शिक्षा के महत्त्व को जानती है और इसिलिए वे शिक्षा का आह्वान करते हुए कहती है -

" तू पढ़ महाभारत / न बन कुन्ती न द्रौपदी ।
पढ़ रामायण / न बन सीता न कैकेयी
पढ़ मनु स्मृति / उलट महाभारत, पलट रामायण
पढ़ कानून / मिटा तिमिर, लगा हलकार
पढ़ समाजशास्त्र बन सावित्री / फहरा शिक्षा का परचम ।" [140]

इस प्रकार दलित कविता साहित्य रजनी तिलक जैसी अन्य कवयित्रियाँ जैसे निर्मला पुतुल, अनिता भारती, रजतरानी 'मीनू' आदि की रचनाओं से समृद्ध हुआ है ।

4.1.22 नवेन्दु महर्षि

'संसद तो सवर्ण है' जैसे चर्चित पुस्तक के रचनाकार नवेन्दु महर्षि दलित कविता जगत के एक सम्माननीय व्यक्तित्व है । उनकी कविताओं में समाज का सच निर्वस्त्र होकर सामने आता है । अंग्रेजों के दासत्व से मुकित, शूद्रों के जो हाथ, शूद्र आदमी, ब्रह्मा के मुख से, एक अपाहिज धर्म आदि कविताओं के रचनाकार कवि नवेन्दु महर्षि की पुस्तक 'संसद तो सवर्ण है' के बारे में डॉ॰ एन॰ सिंह का मंतव्य है कि - " नवेन्दु महर्षि की घोषणा कि - रोटी की न भात की । जंग यह तो जात की । मुझे बहुत ही उत्तेजक एवं महत्वपूर्ण लगती है । दरअसल नवेन्दु की यह पुस्तक हिन्दू धर्म, संस्कृति और राजनीतिक वयवस्था की जिस तरह शल्यक्रिया करती है, उससे नवेन्दु की उत्तेजना और उनके सरोकारों को समझा जा सकता है ।" [141] भारतीय समाज का पौराणिक एवं आधुनिक सत्य तो यह है कि यहाँ मनुष्य मानव नहीं लेकिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र होता है । हिन्दू धर्म का मनगढ़ंत अर्थघटन मानवता एवं समता विरोधी प्रतीत होता है । मानवों को वर्णों में बाँटकर निम्नवर्ग पर नृशंस अत्याचार करना धर्मसंगत बताया जा रहा है, अतः इन पददलित लोगों

का हिन्दू धर्म से विश्वास ही उठ जाता है, और वे अन्य धर्म की पनाह चाहते हैं, नवेन्दु ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है -

" अब ये / चालीस करोड़ दलित रूपी पैर कट कर
अलग होना स्वीकार / कर चूके हैं / हिन्दुत्व के साथ / जुड़े रहने का मोह
अब पूरी तरह / छोड़ चूके हैं ।" 142

दलित कविता में हिन्दू धर्म के प्रति धिक्कार एवं तिरस्कार के भाव प्रकट होते हैं । यही धर्म उनके दमन का कारण बना हुआ है । आधुनिक समाज में दलित आक्रोश से भर चूका है एवं संघर्ष करना जानता है । इसीलिए कवि नवेन्दु ने दमनकारियों का सामना करने की बात की है -

" जो हाथ / मिट्टी कूट सकते हैं / क्या वे दमनकर्ता की हड्डियाँ नहीं कूट सकते ? / जो हाथ / लकड़ी चीर सकते हैं / क्या वे / दमनकर्ता का गला नहीं चीर सकते ? / जो हाथ / खदान से कोयला खींचते हैं /
क्या वे दमनकर्ता के हलक से जीभ / नहीं खींच सकते ? " 143

निश्चित रूप से कवि का आक्रोश अत्यंत तीखा है । कवि नवेन्दु हिंदूवादी भारतीय जनमानस को भली-भांति जानते हैं इसलिए वे तर्क बध्ध एवं वेधक आक्रोश को प्रस्तुत कर पाते हैं ।

भारत को अंग्रेजों से आजादी मिलने के बाद भी भारतीय दलितों के जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है । उनका दमन एवं शोषण रूप बदलकर आज भी कायम है । उच्चवर्ग के पूंजीपतियों ने समाज व्यवस्था को अपने कब्जे में ले लिया और निम्नवर्ग का मनचाहा शोषण करने की परंपरा कायम बनी रही । कवि नवेन्दु ने इसी सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हुए, सवर्णों को संबोधित कर कहा है -

" अंग्रेजों के दासत्व से मुक्ति / किसे मिली... तुम्हें / अंग्रेजों की छोड़ी हुई गद्दी
किसे मिली... तुम्हें / अंग्रेजों की जगह देश को अब / कौन लूट रहा है... तुम
अंग्रेजों की जगह दलितों को गुलाम / कौन बनाए हुए है... तुम " 144

नवेन्दु का राजनैतिक दृष्टिकोण स्पष्ट है । भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक दशा पर उनके मंतव्यों में आत्मविश्वास एवं तार्किकता नज़र आती है । वे बिना किसी लाग-लपेट के जो देखते हैं वह कहते हैं । आज़ाद भारत में दलितों की अवदशा के बारे में उनका सारांश रूप कथन यह है कि -

" यानि की काला अंग्रेज / गोरे अंग्रेज से भी / अधिक खतरनाक है
क्योंकि इसके भीतर / मनुवादी दिमाग है ।" [145]

इस प्रकार नवेन्दु महर्षि की कविताएँ दलितों को यथार्थ बोध करवाकर संघर्ष के लिए प्रेरित मात्र नहीं करती है, बल्कि उन्हें आत्ममंथन के लिए बाध्य करती है ।

दलित कविता एक असीम समंदर है , एक महासागर है जहाँ अनेक कवि अपनी रचनाओं के द्वारा दलित काव्य साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं । शोध प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए हमने इस काव्य-सागर के कुछ मोतियों का अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया है ।

❖ निष्कर्ष

अध्याय के समग्रावलोकन के द्वारा हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि समकालीन दलित रचनाकारों के रचनाकर्म से दलित काव्य स्वरुप में कसाव आया है । दलित कविता अपने अर्थ बोध के साथ-साथ अपने शिल्प-विधान में भी विशिष्ट बनती जा रही है । समकालीन दलित रचनाकारों की कविताओं में युगीन सरोकारों का निरूपण मिलता है एवं दलित कविता जाति विशेष से उठकर अपने सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती नज़र आती है । अध्याय के सारांश रूप हम निम्नलिखीत निष्कर्षों को प्रस्तुत कर सकते हैं ।

१. समकालीन दलित रचनाकारों की भुक्तभोगिता ने दलित कविता के स्वरुप को विशिष्ट बनाया है ।
२. दलित कविता ने दलित दमन एवं परंपराओं से बंधे हुए समाज को दर्पण दिखाया गया है ।

३. समकालीन दलित कविता में बंधनों के मकड़जाल से मुक्ति की छटपटाहट स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है।

४. विद्रोह एवं आक्रोश समकालीन दलित कविता की विशेषता है।

५. दलित कविता में सामाजिक सरोकारों के प्रति निष्ठा एवं राष्ट्रचेतना के स्वर भी स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं।

६. दलित कविता का उद्देश्य सवर्णों को गालियाँ देना नहीं है, अपितु उसका विरोध शोषण मूलक समाजव्यवस्था के प्रति है।

७. दलित कविता समतामूलक मानवीय समाज के निर्माण की पक्षधर है, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके कर्म एवं गुण ही हो।

८. अपने उन सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दलित कविता ने प्राचीन मिथकों का मानवीय दृष्टिकोण से समावेश किया है और कुछ नायकत्वहीन मिथकों को उनके व्यक्तित्व की पहचान करवायी है।

९.   समकालीन दलित कविता केवल और केवल मानवता की पक्षधर है।

* संदर्भसूची

1. ‘ हिन्दी दलित कविता ’ , डॉ॰ रजत रानी ‘ मीनू ’, नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 48
2. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान , गाज़ियाबाद , 2011, पृष्ठ- 111
3. वही , पृष्ठ- 111
4. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन – डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 61

5. ‘ हिन्दी दलित कविता ’ , डॉ॰ रजत रानी ‘ मीनू ’, नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , 2009 , पृष्ठ - 69
6. डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय, हंस , अक्तूबर 1992 , पृष्ठ- 73
7. ‘ हिन्दी दलित कविता ’ , डॉ॰ रजत रानी ‘ मीनू ’, नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , 2009 , पृष्ठ - 83
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि , सदियों का संताप , पृष्ठ-15
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि , सदियों का संताप , पृष्ठ-7
10. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 59-60
11. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान , गाज़ियाबाद , 2011 , पृष्ठ- 121
12. वही , पृष्ठ-121
13. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन – डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 81
14. वही पृष्ठ- 78
15. वही पृष्ठ-77
16. वही पृष्ठ-74,75
17. डॉ॰ वीरेन डंगवाल- भूमिका नई फ़सल
18. नई फ़सल , श्योराज सिंह बेचैन , पृष्ठ- 14
19. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान , गाज़ियाबाद , 2011, पृष्ठ- 123
20. क्रौंच हूँ मैं ,श्योराज सिंह बेचैन, पृष्ठ- 54
21. वही पृष्ठ-31

22. संघर्ष के स्वर (सं॰) श्यामलाल शमी, पृष्ठ- 223,224 पर श्योराज सिंह बेचैन की कविता का अंश

23. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान गाज़ियाबाद , 2011, पृष्ठ - 176

24. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 105

25. वही , पृष्ठ - 107

26. ‘ दलित साहित्य चिन्तन के विविध आयाम ’, डॉ॰ एन॰ सिंह , आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स , गाज़ियाबाद , 2009 , पृष्ठ - 115

27. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 102

28. वही , पृष्ठ - 106

29. वही , पृष्ठ - 112

30. वही , पृष्ठ - 114

31. वही , पृष्ठ - 103

32. वही , पृष्ठ - 111

33. वही , पृष्ठ - 108

34. वही , पृष्ठ -116

35. व्यवस्था के विषघर , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 8

36. व्यवस्था के विषघर , डॉ॰ कुसुम वियोगी , ‘हरिजन’ (कविता) पृष्ठ - 10

37. टुकड़े-टुकड़े दंश , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 87

38. व्यवस्था के विषघर , जूठन , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 22

39. व्यवस्था के विषघर , अछूत , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ-12

40. हिन्दी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन , डॉ॰ जयंतीलाल माकडिया, पृष्ठ- 242

41. व्यवस्था के विषघर , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 23

42. व्यवस्था के विषघर , डॉ॰ कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 16

43. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? डॉ॰ कंवल भारती , पृष्ठ- 40

44. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? डॉ॰ कंवल भारती , पृष्ठ- 44

45. वही , पृष्ठ-67

46. वही पृष्ठ-26

47. वही पृष्ठ-29

48. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? डॉ॰ कंवल भारती

49. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 210

50. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 212

51. सुनो ब्राह्मण , भूमिका , मलखान सिंह

52. सुनो ब्राह्मण , डॉ॰ मलखान सिंह , पृष्ठ- 26,27

53. वही पृष्ठ-9

54. वही पृष्ठ-16

55. वही पृष्ठ-48

56. सुनो ब्राह्मण , मलखान सिंह , पृष्ठ-40,41

57. वही पृष्ठ-44

58. वही पृष्ठ-17,18

59. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान , गाज़ियाबाद , 2011, पृष्ठ - 105-106

60. द्वार पर दस्तक , डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृष्ठ-59

61. वही पृष्ठ-48

62. सवालों के सूरज , डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृष्ठ-47

63. मूक माटी की मुखरता , डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृष्ठ-16

64. मूक माटी की मुखरता , डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृष्ठ-20

65. मूक माटी की मुखरता , डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृष्ठ-27

66. ‘ दलित साहित्य परंपरा और विन्यास ’ , डॉ॰ एन॰ सिंह , साहित्य संस्थान , गाज़ियाबाद , 2011 , पृष्ठ- 115

67. यह तुम भी जानो , सुशीला टाकभौरे , पृष्ठ-24

68. यह तुम भी जानो , सुशीला टाकभौरे , पृष्ठ-23

69. वही पृष्ठ-21

70. यह तुम भी जानो , सुशीला टाकभौरे , पृष्ठ-21

71. वही , पृष्ठ-21

72. यह तुम भी जानो , सुशीला टाकभौरे , पृष्ठ-24

73. कादम्बिनी , अगस्त- 2004 , पृष्ठ-132

74. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन – डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 139-140

75. वही , पृष्ठ-135

76. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ॰ कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 135-136

77. वही , पृष्ठ-137

78. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ० कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 138-139

79. ‘ दलित निर्वाचित कविताएं ’ , संपादन - डॉ० कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 142

80. हिन्दी दलित कविता ; डॉ० रजतरानी ‘मीनू’ ; नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , २००९ , पृष्ठ - 51

81. अँधा समाज ; बहरे लोग ; डॉ० सोहनपाल सुमनाक्षर ; पृष्ठ - 17,18

82. सिन्धु घाटी बोल उठी ; डॉ० सोहनपाल सुमनाक्षर ; पृष्ठ - 38

83. वही ; पृष्ठ - 28

84. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माताप्रसाद ; सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली, पृष्ठ - 137

85. वही ; पृष्ठ - 292

86. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माताप्रसाद ; सम्यक प्रकाशन,नई दिल्ली, पृष्ठ - 302

87. वही ; पृष्ठ - 300-301

88. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माताप्रसाद ; सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली, पृष्ठ - 248

89. बयान बाहर ; डॉ० सुखवीर सिंह ; पृष्ठ - 17

90. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं० डॉ० कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहबाद, 2006 , पृष्ठ - 179

91. बयान बाहर ; डॉ० सुखवीर सिंह ; पृष्ठ - 19

92. वही ; पृष्ठ - 19-20

93. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं० डॉ० कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहबाद, 2006 , पृष्ठ - 180

94. वही ; पृष्ठ - 172

95. पहचान को तड़पती कविताएँ ; विश्वंभर दत्त ; (पुस्तक समीक्षा) दैनिक (वीर अर्जुन) दिल्ली ; 10 नवम्बर, 1988

96. दलित मंजरी ; मंशाराम विद्रोही ; पृष्ठ - 11

97. वही ; पृष्ठ - 40

98. दलित पचासा ; मंशारा विद्रोही ; पृष्ठ - 1

99. दलित मंजरी ; मंशाराम विद्रोही ; पृष्ठ - 29

100. अम्बेडकर डायरेक्टरी ; मोहनदास नैमिशराय (सं) ; पृष्ठ - 144

101. हीरामन ; डॉ॰ धर्मवीर ; पृष्ठ - 37

102. वही ; पृष्ठ - 46

103. वही ; पृष्ठ - 55

104. वही ; पृष्ठ - 76

105. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा माताप्रसाद ; सम्यक प्रकाशन ; दिल्ली : पृष्ठ -150

106. वही ; पृष्ठ - 150

107. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माता प्रसाद : सम्यक प्रकाशन ; नई दिल्ली : पृष्ठ - 153

108. एकलव्य और अन्य कविताएँ ; डॉ॰ श्यामसिंह शशि : पृष्ठ - 54

109. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माताप्रसाद : सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली पृष्ठ - 149

110. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा ; माताप्रसाद : सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली पृष्ठ - 307

111. सतह से उठते हुए ; डॉ॰ एन॰ सिंह ; प्रथम फ्लैप पर

112. सतह से उठते हुए ; डॉ॰ एन॰ सिंह : पृष्ठ - 11

113. वही

114. हिन्दी दलित कविता ; डॉ॰ रजतरानी 'मीनू' ; नवभारत प्रकाशन ; दिल्ली ; पृष्ठ - 123-124

115. सतह से उठते हुए ; डॉ॰एन॰सिंह ; पृष्ठ - 19

116. वही ; पृष्ठ - 53

117. दलित मंजरी ; कर्मशील भारती ; पृष्ठ - 93

118. वही ; पृष्ठ - 105

119. दैनिक हिन्दुस्तान ; 20 नवम्बर, 1993 में प्रकाशित कर्मशील भारती की कविता 'मजूरन' से साभार

120. दर्पण (मासिक) ; अगस्त 1994 ; कर्मशील भारती

121. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ डॉ॰ कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 190

122. वही ; पृष्ठ - 192

123. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ डॉ॰ कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 192

124. वही ; पृष्ठ - 199

125. आक्रोश - भूमिका ; डॉ॰ सी॰बी॰भारती

126. दलित साहित्य ; 1999 ; सं॰ जयप्रकाश कर्दम ; पृष्ठ – 279

127. दलित - निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ कँवल ब भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहबाद, 2006, पृष्ठ – 130-131

128. वही ; पृष्ठ - 129

129. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहबाद, 2006 , पृष्ठ - 127

130. वही ; पृष्ठ - 131-132

131. वही ; पृष्ठ - 129

132. वही ; पृष्ठ - 120-121

133. वही ; पृष्ठ - 123

134. वही ; पृष्ठ - 124

135. अंगुत्तर ; जनवरी-फरवरी-मार्च ; डॉ॰ दयानंद बटोही ; पृष्ठ - 49

136. दर्द के दस्तावेज ; सं॰ डॉ॰ एन॰ सिंह ; पृष्ठ - 112

137. दर्द के दस्तावेज ; सं॰ डॉ॰ एन॰ सिंह ; पृष्ठ 109

138. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ डॉ॰ कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहबाद, 2006 , पृष्ठ - 148

139. वही ; पृष्ठ - 145

140. वही ; पृष्ठ - 146

141. दलित साहित्य परंपरा एवं विन्यास ; डॉ॰ एन॰ सिंह ; साहित्य संस्थान, गाज़ियाबाद , 2011 , पृष्ठ - 133-134

142. संसद तो सवर्ण है ; नवेन्दु महर्षि ; पृष्ठ - 98

143. दलित निर्वाचित कविताएँ ; सं॰ डॉ॰ कँवल भारती ; इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद, 2006 , पृष्ठ - 161-162

144. वही ; पृष्ठ - 159

145. संसद तो सवर्ण है ; नवेन्दु महर्षि ; पृष्ठ - 39